होलकर-हिन्दी-ग्रन्थमाला संख्या २९

गुर्जरगिराके असामान्य और अनुपम वर्तमान कविवरेण्य

श्रीन्हानालाल दलपतरामजी

कृत

प्रेमकुंज.



हिन्दी रूपान्तरकार

पण्डित श्रीगिरिधरशर्माजी नवरत्न

काव्यालङ्कार

प्रकाशक

चि० ईश्वरलालशर्मा विद्यार्थी

नवरत्न-सरस्वती-भवन

झालरापाटन-राजपूताना

प्रथमवार] [मूल्य

श्रीयुत गजानन विश्वनाथजी पाठक द्वारा

आदित्यमुद्रणालय (अमदावाद) में मुद्रित

परमपावन

प्रेरणाके अमृतपान करानेवाली

रसदेवीको

स

म

र्पि

त



मेरी बात

कविवरेण्य श्री न्हानालाल दलपतराम को गुजरात अपना कवि मानता है और उचित सन्मान करती है। अभी कलकी बात है कि गुजरात और महागुजरातने कविका जन्मसुवर्णमहोत्संव मनाया और कविका वह सन्मान किया कि संसार के किसी भी कविका सन्मान इस तरह जीवितावस्थामें मनाया जाना इतिहास के पत्रोंमें नहीं मिलता। गुजरात इन्हें अपना कवि मानकर सात्विक गर्व ले इसमें किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। मैं भी एक गुजराती हूं परन्तु 'अस्मिता' ऐसी न बढ़ जानी चाहिये कि 'भारतीयता' को और 'मनुष्यता' को भुला दे। हम भारतीय हैं–हम मनुष्य हैं यह एक ऐसा सत्य है कि इस पर प्रान्तीयता को विशेष महत्व नहीं दिया जा सकता। कवि श्री न्हानालाल को मैं विश्वकवि ही मानता हूं और वे हैं ही। वर्तमान कवियोंमें मैं जिन विरलतर कवियों को जानता हूं उन '**सत्यं शिवं सुन्दरं**' के कवियोंमें न्हानालालभाई का बहुत ऊंचा आसन है। हिन्दी जनता को यह बतलाने की आवश्यकता भी क्या है जब कि वह **जयाजयन्त, उषा, युग-पलटा** और **महासुदर्शन** के रसास्वाद कर चुकी है। आज कविका **प्रेमकुंज** उपस्थित है। सहृदय, सच्चे प्रेमदेव की झांकी करें। प्रभुकरे घरघरमें प्रेमदेव की स्थापना हो।

नवरत्न-सरस्वती-भवन
श्रा. शु. २ सं. १९८५ } **गिरिधरशर्मा**

प्रस्तावना



कोई विचारक या कोई उपहासशील फिर प्रश्न करेंगे कि हेरफेर कर। फिर भी वह–की–वह प्रेमोन्मत्तता की कथायें ? कवियों को कुछ धंदा भी है दूसरा ? कुछ गांभीर्य, कुछ संसार के महाप्रश्न, कुछ महत्त्वपूर्ण सत्त्वमय भोज्यः यह तो कुछ भी नहीं और, लौट फिर कर पीछी-की-पीछी वह-की-वह प्रेम की उन्मत्त बातें ? उपहासवालों को तो प्रत्युपहास के सिवाय कोई उत्तर दिया ही नहीं जा सकता और विचारशील चतुरों को इतनी सूचना कर देना काफी है कि प्रेमरस से लबालब भरे हुए इस संसारमें परम गंभीर विषय, इस संसारका ही नहीं सर्जन मात्रका महाप्रश्न, गहन गंभीर पर्येषणाका महातत्त्व, क्या प्रेम नहीं है ? साक्षर या निरक्षर, ज्ञानी या अज्ञान, विचारशील या मखोली, प्रत्येक मनुष्य के आत्मा को और जीवन को मथ डालनेवाला, मानवजाति का कोई दूसरा इससे भी अधिक महत्त्वशाली प्रश्न है ? गृहस्थाश्रम के बिना घर, नगर, या राज्य नहीं हो सकताः गार्हस्थ्य-अग्निकी संस्थापना के बिना गृहस्थ और गृहस्थाश्रम नहीं हो सकता। गृहस्थ और गृहस्थाश्रम की पुण्य भावनायें हमारे संसारमें कैसी नष्ट भ्रष्ट हो गई हैं ! यह गार्हस्थ–अग्नि है कौनसा ? क्या यह प्रेमज्योतिसे जुदा है ? अग्निहोत्रका अग्नि तो क्या आन्तरिक यज्ञकुण्डमें की अखण्ड ज्योतिकी मूर्ति–मात्र स्थूलरूप सूचक चिन्ह नहीं है ? प्रेमपूजा मनुष्यजाति के इतनी ही पुरानी और जीवनमयी है ! इसका विस्तर ब्रह्माण्डव्यापक है ! महासागर की मौजों के समान इसकी भरती आती है और ओट भी होता है। यह भुलाई जाती है और याद भी आ जाती है। लुप्त हो जाती है और स्थापित

भी होती है; परन्तु प्रेमोर्मिप्रेमसर सदाका सजीवन है। बुझी हुई प्रेमज्योति पीछी प्रकटी और खोई गई प्रेमआरती पीछी मिली, इस बात की यह कथा है। प्रेमोत्सवकी इस परम रसकथा के ग्रन्थ, गृहस्थाश्रमके संस्थापन के उद्बोध, बढ़ें तो उससे क्या मनुष्योंको हानि होगी? आजका जगत प्रेमकी पुनःस्थापनाकी कविता मांग रहा है। आजकल अप्रेम को प्रेम समझ प्रेम के नाम पर बहुत सी भूलें और पाप हुए हैं, और होते हैं। इस युगमें प्रेमपदार्थ के स्थान पर प्रेमप्रतिबिम्बका पूजन चल पड़ा है। भूलों हुओं को मार्ग दिखाने के लिये भी संसारसम्राट प्रेमदेवकी सच्ची रसकथा इस समय आवश्यक है। इसी प्रेमराजा की यह पुण्यकथा है, सब काल और सब देश के प्रेमसन्तानों के लिये; इसके परिमल सच्चे होंगे तो संसारभरमें सत्कार पायेंगे ही।

न्हानालाल दलपतराम कवि

पूर्वकथा

हरीभरी कुंजोंमें गोमती नदी है और उस के किनारे पर एक छोटासा गांव । गोमती को लोग प्रेमोर्मि कहते हैं और गांव को प्रेमकुंज । प्रेमोर्मि के पानी सरसर बहते हैं । प्रेमोर्मि के पाताल पानी का दह सदा का सजीवन है । दुकाल की गरमियों में भी नहीं सूकता । गोमती के इधर उधर पुराने वटयूथ की घटा है, बीचमें वृक्षोंसे घिरी हुई छोटीसी टेकरी है, उसपर विशाल अश्वत्थ है, और एक तीर पर आंबावाड़ीमें आशापूरी के जाली झरोखे के पास ही **प्रेममन्दिर** है । उसके आसपास दूरदूर तक झाड़ियों की घटायें और कुंजों के घर है । कितने ही वरसोंसे प्रेममन्दिर के द्वार बंद है, और इन दिनों प्रेमकुंजमें प्रेमपूजा नहीं होती. कई वरस पहले इस प्रेममन्दिरमें प्रेमपूजा होतीथी और आरती उतारी जातीथी । इस आरती को जतन के साथ अवेर रखने का अधिकार प्रेमकुंज के मुखिया के कुटुम्ब को था, और कोई सौन्दर्यतिलक स्त्री या पुरुष वारावारीसे आरती उतारते थे । कितनेक वरस पहले प्रेममन्दिरमें-से मन्दिर की आरती जाती रही और उसी दिन प्रेमकुंज की मुखियांनी रसिका पांच वर्ष के एक बालक को छोड़कर गुजर गई । रसिका गुजरी उसी दिनसे रसिका की सहेली देवबाला गूंगी हो गई थी सारसजोडी उड़ गई थी । प्रेमोर्मि की पाल की एक पर्णकुटियों के तलधरमें देवबाला रहती थी । मुखियाने बालक का नाम वीरेन्द्र रक्खा था । सारङ्गीमें तड़ पड़े इसतरा मुखिया का हृदय चिर गया वह फिर जुड़ाही नहीं, और कुछ ही महीनोंमें एक पूनम की रात का मुखिया भी प्रेमोर्मिमें–अश्वत्थ पास के पाताल दहमें डूब कर देव लोक को प्राप्त हो

गया। वीरेन्द्र बड़ा होता गया जब वह किशोर हुआ तब वह प्रेममन्दिर के द्वार को सदा बन्द देखता और उसे हमेशा अपने कुलकलङ्क होने का भान हुआ करता। अन्तमें वीरेन्द्र हियासूना हो गया। तीन दिन तक उपवास किये, तीन दिन आशापूरी के मन्दिरमें बिताये, प्रेमकुंज-वासियों की आज्ञा ली और एक प्रभातमें १३ वर्ष का तरुण कुंज को छोड प्रेममन्दिर की आरती खोजने देशान्तर को चल पड़ा। आज उसे १२ वर्ष बीत गये।

वीरेन्द्र के गये बाद गांवपंचोंने प्रेममन्दिर की रखवाली—वीरेन्द्र के आने तक—गांव के दूसरे कुटुम्ब रतन के सिपुर्द की। पूजा तो बन्द रहही नहीं सकती, अतएव गांव के लोगों की तरह इस बालिका के घरवाले भी प्रेमपूजा के स्थानमें छायापूजनमें लग गये, और अपने कुटुम्ब का कीर्तिपरिमल बढ़े इस विचारसे मन्दिर के दहेली दरवाजे सोनेचांदीसे मंढवाये। रतन जैसे जैसे बड़ी होती गई वैसे वैसे प्रेममन्दिर की देखरेख और संभाल रखवाली का भार अपने पर लेती गई। इस समय रतन की पहिली बीसी पूरी हो रही थी। ग्रामजन उस गांव का रतन बताते थे। प्रेममन्दिर की गई हुई आरती की और वीरेन्द्र की वह प्रतिदिन बातें करती-सुनती थी। और आशापूरी के साम्हने वह प्रेममन्दिर की मकराने की सीढियों को धोने को जाती थी. वह उन्हें धोकर उन के पास बैठी हुई वीरेन्द्र की बाट देखा करती थी। इस नित्यसमाधि से उस के मुखमण्डल पर अन्तर्ज्योति प्रकट हुई थी। नित्य नियम के अनुसार कुंजो में से वह बीनबीन कर, प्रेमपूजा के लिये नयेनये पल्लव लाती थी और प्रेमपूजा बन्द होने के कारण वह उन पल्लवोंसे प्रेममन्दिर के तोरण बांधती थी। इस काम से जो पल्लव बच रहते उनसे वह सूनी अपने को ही सजाती थी।

कितने ही बरस पहले बैरागियों की एक जमात जातरा को जाते

चिमटा ले ले कर नवलकिशोर को मारने को चारों ओर से घिर आये। 'दुनियांमें कविता की कमी है? तब की तरह भांग तो पीता नहीं है। तुलसीदासजी से भी बढ़कर महन्तजी कविता करते हैं उन की नकल उतारता है। बंसी बजाते ही तो कविता की भी ढोंग करने लगा कविता तो अब हो ली:' यों कहकर वे उसे मारने लगे। अधमरा कर डाला। सारी जमात उसे वहीं डालकर चलदी। धीमे धीमे नवल-किशोर प्रेमोर्मिका जल और कमलडंडियों के आधारसे अच्छा हुआ और बड़ा हुआ। गोमतीके किनारे पर वृक्षोंमें वह रहताथा और कलमककड़ी भिक्षा के आदि से अपना निर्वाह करता था। किसी दिन त्रिकाल संध्याके समान—किसी दिन पांच नमाज़ के समान—कुंजोंमें बंसी बजाता था और रसेश—रमेश्वर कहा जाता था। प्रेममन्दिरकी आरती लोप हो जानेकी खबर हुए बाद बहुत समय व्यतीत हो जाने पर—विचारश्रेणियां करके—प्रेममन्दिर के पुनरुद्धार के लिये आशापूरीमें उसने यज्ञ आरम्भ किया और आज उस यज्ञकी पूर्णाहुतिका दिन है। पाटनगर से राजकुमार और राजकुमारी भी इस महोत्सवमें उत्सववाले बन कर आये हैं। प्रेमकुंजमें आज वरसोंका पर्व है। कि जैसा पर्व प्रेममन्दिर की प्रेमपूजा बन्द हुए बाद बरसोंसे नहीं मनाया गया था। आज वीरेन्द्र को गये पूरे १२ वर्ष हो गये हैं।

प्रेमकुंज

अंक १ ला

१ ला प्रवेश:

आशापूरी का यज्ञ;

चढ़ता प्रभात

[गहरी आम्रघटाओं की सघनवन गुहाओं में आशापूरी के मन्दिर के शिखर पर प्रभात का देवकेसरियां सूर्यप्रकाश प्रकटता जा रहा है। चारों ओर फिरती हुई पल्लव मालाओं में के इस सूर्य केसररंगी शिखर पर विराज कर रसेस प्रातःवंसी बजाता हुआ देख पड़ता है। इस वंसीनाद से जगत निद्रा में से पुनश्चेतना पाता हुआ जान पड़ता है। रसेस के आदेश से ब्राह्मण यज्ञक्रिया में पखवाडसे गुँथे हुवे हैं। लोकसंघ प्रभातसेही आज दर्शनके लिये आने लगा है। आशापूरीके झरोखेसे आ एक चबूतरे पर खडी होकर सुहाग, माताजी के दर्शन को पधारने के लिये सबको निमन्त्रण दे रही है।]

सुहाग: आओ–आओ !

आओ–आओ, सन्तजन सब ! आओ–आओ !

गाओ–गाओ, आशागीत गाओ–गाओ !

आशाभरे, यौवनभरे, जीवनभरे

आओ–आओ (ध्रु०)

यज्ञके ये ओजस् ओपे, दर्शन करो, तमस् लोपेः
हृदय-हृदय ज्योति रोपेः आओ-आओ !
आशाभरे, यौवनभरे, जीवनभरे
आओ-आओ ! १

ऊर्मि सदृश ध्वज उड़े, निराशा-निःश्रद्धा बूड़ेः
आशाके मन्दिर रुड़े, आओ-आओ !
आशाभरे, यौवनभरे, जीवनभरे
आओ-आओ ! २

आत्म सा विशाल व्योम, प्रेमभक्तिकी ये भोम
ब्रह्म रमे रोम रोमः आओ-आओ !
आशाभरे, यौवनभरे, जीवनभरे
आओ-आओ ! ३

पधारो आशापूरी की सन्तानो !
पधारो माताजी के दर्शन को:
आशापूरी आशाओं को पूर्ण करती है सबकी.

एक ब्राह्मणः—आज तो मानो नवीन युग का उदय हुआ ! स्मरणों में आता है वहां तक तो ऐसा उत्सव मनाया नहीं गया यहां.

दूसरा ब्राह्मणः—रसेस तो मानो देव अवतरे हैं प्रेमपूजा के पुनरुद्धार के लिये.

देखोन ! माजी के मन्दिर शिखर पर,
इन को तो सूर्यनारायण भी अभिषेक करते हैं।

एक ब्राह्मणकन्याः—वह विराज रहे हैं, ऊंचे कुंज के पाटे पर,
मानो आशापूरी का देव कलश ही न हो.

सुहागः—कुंज का बनाया है देव गालीचा,
और लगाया है उसपर शिखर का सिंहासन.

पहला ब्राह्मणः—मन्दिर ध्वज भी इन पर तो छत्रछाया
कर रहा है.

[नव पल्लवों से सजाई हुई सहेलियों के परिवार के साथ रास लेती हुई, फूलों से लचकती लता के ऐसी, रतन, कुंजेंमें से आशापूरी के मन्दिर पर पधारती है]

रतन और सहेलियांः—

अच्छी अच्छी बेलके मंडप
गहरी गहरीझाड़ियां सहेली !
कुंज जगा बोले मोरवा
डालीमें बोले कोयली.

पियुजीने प्रेमके मन्त्रकी
झीणी झीणी वांसरी वजाई;
उरकी ऊंडी अम्बावाड़ीमें
ऊंघती वे कोयलें जगाई:

संखि ! विरहीके चैन,
जाने पियुगेले नैनः
अच्छी–अच्छीवेलके मंडप.

(वदनमंडलपर सूक्ष्मतर स्मितरेखा फरकती हुई देवबाला आती है.)

लोकसंघः—गूंगी, प्रेमकुंजकी गूंगी;
प्रेम सरोवर की पाल की गूंगी.

(आनन्द के उभेर से देवबाला खड़खड़ हँस पड़ती है. चारों ओर निहार कर मन्दिर शिखर पर इशारा करने से रसेस शिखर से उतर कर आशापूरी के दूसरे चबूतरे पर खड़ा हो कर रासमें वंसी पूरता है हरियाली कुंजकमान में हो कर आते हुए राजकुमार और राजकुमारी दूर से दिखाई देते हैं.)

रतन और सहेलियांः—

प्यारेका वास उर वागमें वसन्तमें;
सुरभित हिय पिय परागसे वसन्तमें;
मीठी मीठी हौंस मन जागती वसन्तमें:

सखी ! विरहीकी वात,
जाने पियसूनी रातः
अच्छी–अच्छी वेलके मंडप.

(रास पूरा होने पर सब सहेलियां चबूतरे पर खड़े हुए रसेश को और सुहाग को वन्दना करती हुई माता के दर्शन कर आती हैं । रतन जा कर सुहाग के कंधे पर हाथ टेक कर थकी सी अंग डाल देती है.)

सुहागः—आज नवयुग का उत्सव है

कई वर्षों से शोक पालती हुई प्रेमकुंज को
उत्सव के वाग सजाये हैं आज रसेसने.
प्रेम सरोवर का तीर आज उभराया है रतन,
मनुष्यों के प्रफुल्लित होते हुए फूलों से.

रतनः— (गहरा निसासा डालती हुई)

आज वीरेन्द्र होता तो ?

(कुमार और कुमारी आशापूरी की सीढियों पर चढ़ते हैं । दो थाल ले कर दो परिचारक पीछे पीछे चल रहे हैं.)

कुमारीः— सुनी न यह बंसरी ?
जगत को जगाती, ब्रह्माण्ड को हिलाती !
गाँवड़ों का तो मोह होता है मुझे.
गाँवड़े ऐसे होते हैं यह तो आज ही जाना.

कुमारः—(हसते हसते)

इसमें तो हमारा अज्ञान था.
देश की दौलत गांवड़ों में सरजाती है,
और गांवड़ियों के स्वेद बिन्दु से
सींचे जाते हैं ये सर्जन

सुहागः—और नागरिकों की बुद्धि के बागीचों में भी
निपजती है देशकी दौलत.
ये बंसी बोल तो रसेश के थे
रसेश तो है प्रेमकुंज का रसर्षि.

रतनः— पधारो, राजवत्सो ! कृपा की.
महाशय महाराज और महाराणीजी तो प्रसन्नचित
हैं न ?

(कुमारी रतनके पास जाती हैं, कुमार सुहागके पास जाते हैं)

कुमारः—कृपा तो देवसेविके !
उत्सवके आमन्त्रण देनेवाले की:
आनेवाले तो स्वारथी हैं.

सुहागः—प्रेमके स्वार्थी सब कोई हूजियो !

कुमारीः—(न सुनती सी निजको ही सम्बोधती हुई
मोहवेणु-सी बोल रही थी
यह मनमोहन मुरली

कुमारः— महाराजने महामायाके वास्ते
और महाराणीजी ने देवसेविका के लिये
शृङ्गार सामान पठाये हैं.
संघ के कुशल समाचार पुछाये है.

सुहागः—(मंदिर के खुली–चौकी को उलांघते २)
कितने थोड़े–थोड़े हैं
शुभमें स्वार्थ समझने वाले भी ?

(सुहाग, कुमार–कुमारी को मन्दिरमें दर्शन करने के लिये ले जाती है और फूलपंखिड़योंसे माजीका स्नानोदक देती है. अनुचर माजीके चरणोंमें महोरें रखते हैं, रतन हं ! हं ! हं। करती हुई मन्दिरमें दोड़ती आती है.)

रतनः— हं ! हं !: कुमारी ! क्षमा करो.
(कुमारी का हाथ झाल कर बाहर ले आती है.)
क्षमा करो, राजकुमारी !
प्रकृति के फलफूल ही चढ़ाये जाते हैं;
यहां तो आशापूरी के
हृदयके थाल ही रक्खे जाते हैं.
सुवर्णपूजा तो छायापूजा है.

(लोकसंघकी ओर)

पधारो, प्रकृतिके बालको !
और चढ़ाओ प्रकृतिके पुष्प आशापूरीके.

(सुहाग कुमार को लेकर मंदिरकी सीढ़ियों पर आती है. रसेस की पहचान करा के.)

सुहागः—ये हमारी प्रेमकुंज के रसेश्वरः
आजके यज्ञके अधिष्ठाता,
और रसेश ! ये हमारे
राजकदम्ब के प्रफुल्लित हुए पुष्प.

(कुमारी कुमार रसेशः सब परस्परमें प्रणाम करते हैं)

रसेशः— कल्याण हो राजमञ्जरियोंकाः
प्रजामें परिमल फैलाना !

कुमारीः—सुहाग बहुत सुन्दर कहती है कि
प्रेमकुंज में आज नवयुगका उत्सव है !

रसेशः— प्राणको प्रेरणा पिलाना
यह आजका तो है युगधर्म,
अन्तरमें उल्लास प्रकटाना
यह है आयुष्य का उत्सव
देशकालके परीक्षक प्रजावैद्योंका.

उगता उषःकाल है आज
प्रेमपूजा की पुनःस्थापनाका.

कुमारः— आपकी वंसीमें चेतन की फूंक है;
इसमें की यह जागर्ति कि जो
जगत को घुमाती है.
किसी नव्य संप्रदाय के साधु जान पड़ते हो.
आपका सम्प्रदाय कौनसा है?

रसेशः— मेरा सम्प्रदाय तो
जगजूना है—विश्वविशाल है;
मेरा है, आपका है, सबका है.
किस पृथ्वीवासी का नहीं है सो पूछना.
मेरा तो प्रेमपूजाका है सम्प्रदायः
हम तो प्रेमसम्प्रादयके हैं साखी.

(प्रेमकुंजकी भजनमंडली भजन गाती गाती आती है.)

भजनमंडलीः

प्रेमके पदारथ पारखो रे परखैया सन्तो !
कामके कोंच पहचानो रे परखैया सन्तो !

यह शुक्र उगा औ गुरु उगा
तो भी प्रभा न नभमें होय,

पर चन्द्र उगे सोलह कला
दे रैन अंधारे धोय
रे परखया सन्तो !

कामके कोंच पहचानो रे परखैया सन्तो !
प्रेमका हीरा पारखो रे परखया सन्तो !

(भजन पूरा होने पर भजनमंडली आशापूरी के चबूतरे पर और प्रेममन्दिर के मुखद्वार की ओर दंडवत करती है.)

रसेशः— नाहं वसामि वैकुण्ठे
भक्तानां हृदये च नः
मद्भक्ता यत्र गायन्ति
तत्र तिष्ठामि नारद।

प्रभु प्रेमके जहां जहां भजन होते हैं
वहीं वहीं है प्रेम प्रभु के सिंहासन.
देव—अर्थात् दुनियाका अखंड ज्योति दीपक.

देखूं मैं प्यारे! तेरी वाट रे:
आज घरमें
देखूं मैं प्यारे! तेरी वाट रे.
देखूं मैं प्यारे! तेरी वाट रे:

देखूं मैं प्यारे! तेरी वाट रे.
आज उरमें
देखूं मैं प्यारे! तेरी वाट रे.

(प्रेमानन्द में आ जाता है, वंसी वजाता है, नाचता है. रतन इस धुन को झिलाती है प्रजाजन धुन झेल लेते हैं और प्रेमानन्दमें निमग्न हुए नाचते हैं; इतने में डंका वजता है.)

ब्राह्मणः—मुहूर्तकी घड़ी वजती है
मानवकुल के लियेः पधारियेगा!

रतनः— (नाचते हुए रसेशको)
यह घड़ी आई है, रसेश!
वीरेन्द्र को जो प्यारी थी वहः
आयुष्य के द्वार खुलने की घड़ी.
यज्ञ मण्डप में पधारोगे जी?

रसेशः— वीरेन्द्र को प्यारी थी वह?
प्रेमपूजाके पुनरुद्धारकी घड़ी?
अभी तो उदय ही हुआ है,
रतन! मध्यान्हको विलम्ब है ज़रा.
मध्यान्हमें वीरेन्द्र आवेगा—कल.

(सब यज्ञमंडप में जाते हैं। वरणी के ब्राह्मण '**शक्रादयः**' बोलकर यज्ञके अखीरी मन्त्रोच्चारणका मंडपके चोतरफ फिरता हुआ

-महा घोष गजा रहे है। पूर्णाहुति का पहला नारियल माजीकी पुजारण सुहाग, होमने को आती है.)

आचार्यः—गाओ सब गाओ माजीकी आरती.

इधर, देवसेविके! इधर.

(लोकसंघ आशापूरी की आरती गाता है: झांझे पखावज, -नोबत गाज उठती हैं.)

जय त्रिभुवनेश्वरी।

जय लोक लोक विधात्री! जय महेश्वरी! ध्रु०

जय सद्बुद्धि! स्मृति! धृति! जय पुण्य प्रेरणे!

जय त्रिगुणात्मिके! माया! जय जग आदेशने!

जय महाशक्ति! दुर्गे जय विश्वचेतने!

जय त्रिभुवनेश्वरी!

सुहागः—(इस एक चरण के पूर्ण होने पर)

महामाया! आद्यशक्ति! प्रकृतिस्राविणि!
प्रेमकुंज प्रेमसूनी है,
प्रेममन्दिर की आरती क्या मिलेगी?
सर्जनधात्री! त्रिभुवनेश्वरी!
मेरे सेवाव्रत सच्चे हों तो
हे योगमाया! उत्तर देना.

(श्रीफल होमती है. आशापूरी के अंगोंमेंसे देववाणी होती है.)

देववाणीः–प्रेमकुंजें सूनी नहीं हैं,
खोजते हो सो सब मिलेगा.

लोकसंघः–जय ! माजीका जय !

कुमारीः—उत्तर मिला, परन्तु अधूरा.

कुमारः— आर्तको आशा बंधाईः
आशा तो अमर है न ?

सुहागः—रतन ! आ न ? तू पूछ देख ?
माजी को तू प्यारी है.

(पूर्णाहुति के श्रीफल को होमने के लिये रतन आती है लोकसंघ आरती गा रहा है शहनाई बज रही है.)

लोकसंघः—

जय आशापूरी ! विश्वप्रकाशिनी पूर्णकला हे !
जय जीवनश्री ! सुन्दरता ! स्वर्गसुधा ! हे !
जय ब्रह्मलीला ! ब्रह्मछाया ! ब्रह्मप्रभा ! हे !
जय त्रिभुवनेश्वरी !

रतनः भवानी ! महेश्वरी ! जगद्धिधात्री !
बारह बारह बरसों के उषःकाल
हुए, और व्यतीत भी हो गये वे.

परदेशके पंथ अनिमेष निहारते,
बारह बारह वर्ष के मध्यान्ह अस्त हो गये.
कुछ खबर नहीं–कुछ हाल संभाल नहीं
वीर पुत्र वीरन्द्र की.
सूने–सूने हैं, महा देवि !
प्रेममन्दिर प्रेमपूजा–विरहित.
मेरे व्रत सच्चे हों ओ आशापूरी !
तो आशा का उच्चारण पूर्ण कर.

देववाणीः–राधिका की रस चूंदड़ी
और कृष्णचन्द्र का प्रेम मकुट मिलेगा,
तब प्रेममन्दिरमें अखंड ज्योति दीपक प्रगटेगा !
तब पधारेगी प्रेममन्दिरमें
खोई हुई प्रेमपूजा की प्रेम आरती.

(रसेश पूर्णाहुति का श्रीफल होमने को पधारता है.
लोकसंघ आरती गाता है. रसेशकी वंशी मात्र सुर पूरती है.)

लोकसंघः—

जयश्रद्धे ! जयध्वजधारी विश्वविजयिनी !
जय धात्री ! विभु विराटनो ! जय सर्व पावनी !

जय जगज्जननी अंबिके जय ब्रह्मस्वामिनी !
जय त्रिभुवनेश्वरी !

रसेशः— जगजननी ! जगदम्ब !
उर–ऊर्मियों को उछालकर प्रेमसरोवर वधाता है,
चरण धो कर प्रेमवती चरणामृत लेती है,
वायुविकम्पित आंबावाड़ी चमर ढोलती है,
प्रेमकुंज वन्दता है, याचता है, उत्तर दो:
रसेशके रससन्यास सच्चे हों
तो दिखलाओ परमवत्वले !
प्रेममन्दिरकी प्रेम आरती कहां है ?

देववाणीः–आत्मा देहमें विराजता है,
परमात्मा विराजते हैं आत्मामें:
प्रेम आरती भी प्रेमकुंजमें ही है.

लोकसंघः–जय ! माजी का जय !
जगज्जननीका त्रिकालमें जय !

(आशापूरी के शिखर ध्वजसे एक बिजली का चमकारा प्रकट हो कर प्रेमकुंज में फैल जाता है, घटाओं में लोप हो जाता है.

गूंगी देववाला देवमूर्तिमी गंभीर मुद्रासे यज्ञमंडप के पीछे से आ कर, विषाद की चलती हुई दीपिका सी, मनुष्यसंघमें विचरते भूतसी प्रेमसरोवर की घटा कुंजों की ओर जाती है.)

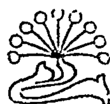
लोकसंघः—गूंगी, प्रेमकुंज की गूंगी.

(देवबाला हंस पड़ती है. सब ' गूंगी ' ' गूंगी ' कह कर चिड़ाते हैं. देवबाला वैसे-ही-वैसे ज्यादा ज्यादा हंसती मुसकराती असाधारण हास्य करती लोक संघमें से हो कर जाती है)

रसेशः—

आशापूरी का आत्मा कुंजमें फैला,
यज्ञमें से प्रकटी आशा की ज्योति,
और जग गई प्रेमकुंजमें प्रेमज्वाला.

(अद्भुत आश्चर्यचकित नयन से निरखता हुआ कुतूहलमुग्ध लोक समाज विविध दिशाओं की ओर देखता ही रह जाता है)



प्रवेश २ रा

गोमतीका घाट;

मध्यान्ह का समय,

(प्रेम सरोवर के तीर पर के पुराने बडों की सघन कुंज घटा के वन्य एकान्त में अपने खेमे के पास की वटशाखा में बांधे हुए दो जालीझूलों पर कुमार और कुमारी झूल रहे हैं। कुमार रघुवंश पढ़ रहे हैं, कुमारी दिलरुबा मिला रही है.)

कुमार:—गांवड़े में आया हूं,

परन्तु गांवड़ेल तो नहीं बन गया,
और न गांवड़े का शहर ही किया.
दिलीप राजा धेनु को चराते थे
वैसे चरानी चाहिये हरेकरीमें
राज गोपोलों को प्रजा धेनु.
नगर गावों को ढंकते हैं,
तो गांवड़े नगरों को भोजन कराते हैं.

कुमारी:—आशापूरी के शिखर से चलता,

कुंज और अन्तरिक्ष को पूरता,
आकाश वेध कर पार होता,
रसेश की वंसी का अमृत बोल सुना

२

तभी से ज्वार की तरह उतर गये
मेरे भी दिलरुबा के मोह.

कुमार :— हुन्नरकला के फल फूलसे नगर
मानव जीवन को शृंगारते है;
गोरस के अमृतत्त्व से गांवड़े
मानव जीवन को जिलाते हैं.
गोपकुंजें वंसी–सी बोलती है,
सौ रेखा वाले मार्ग तन्तुओं की
फूल गूंथनी वाले नगर
दिलरुवा–से बोलते है.
समझदारों के लिये दोनों के आनन्द शब्द है.
नगर की हवेलियों की रसकला
और गांवड़े की कुंजोंमें की कुदरत:
दोनां है सौन्दर्य के सरोवर.
तेरी केसर चंपा भरी वदनश्री
तो है मानो सोनेका उगता सूरज:
परन्तु अजब सलूनी सुहागका
कुंकुम छांटा चांदनी पूर्ण मुख चन्द्र
तो मानो है अमीनिर्झरता देव कलश:
दूध की बरसती मानो बदली:

प्रेमकुंज की मानो कामधेनु !
कुमारी ! तू है चम्पावर्णी,
रतन और सुहाग हैं अमृतवर्णियां.

कुमारीः—रतन का वदन तो देखा ही है !
कुंजों का शिखरकलश तो मानो रमेश,
और प्रेमकुंज की परम कोयिका
तो है मानो रमेशकी वंसी.
कहूं ? सच कहूं ? कुमार ?
मैं तो खोजती हूं तभी से
प्रेमकुंज के इस मधुर मार्ग को. सुन.
रमेश तो है सबका मनोहर,
और प्रेमकुंज सब की कामणवाली.

(दिलरुवा को बजाती है और गाती है.)

बताओ कोई प्रेम की इस कुंज की हो गेलीः
हृदयवेधक मुरली मनमोहनने वहां छेडीः
बताओ कोई प्रेम की इस कुंज की हो गेलीः
कविताभिलापभरी, प्रेमपीयूषमयी
काट छांट लेना न कोई बगीचीः
कारी कामण के रूप के लावण्य के
इस मोहनी के मण्डपने मुझे घेरीः
बताओ कोई प्रेम की इस कुंज की हो गेलीः

कुमार :—तेरे उरमें बंसी बोल गई:
कुमारी ! अब तुझे व्याह करना चाहिये.

कुमारी:—रसेश परने तो आज परनूं—
इसीवक्त, मेरे चतुर सुजान !
रसेश का मोह लगा है मुझे.
और–तुम्हारी बंसी भी, कुमार !
किसी रसिका के अधर पर धरो,
कि भीतर फूंक भरे और गजावे.
तुम्ह परणो मेरे शयाने वीर !
बोधते हो वह पालो तो सही.
दूर करो अपना निराशावाद,
वेशधारी योगी के अञ्चलसा:
उड़ नहीं गई अभीतक तो
जगदुद्यान में से सुन्दरी की सुन्दरता.
सारे संसारमें कोई नहीं है सुन्दर ?
—तुम्हारा सा ? वीर ?
अँखियाओं में प्रेम मन्दिर की आरती
चम चमाने लगी हैं तुम्हारे भी.

कुमार :—यह कुछ पुराना है जगत,

और इस में के कुछ पुराने हैं स्त्री पुरुष:
सौन्दर्य के सूरज चांद तो हैं कोईक ही.

(अधर घटा में के जाली—झूले पर झूलते हुए भाई—बहनों को न निहारती, सूने खेमे में स्वयं अकेली है ऐसा सोचकर गाती, नाचती, फूंदी (चक्कर) लेती, दिल के घोड़े की लगाम को छोड़े हुए, सुहाग वट कुंज में से आती है और एक ही धुन में बोलती हुई आती है.)

सुहागः—

मधु वन में मुरली बाजे है;
इस का नाद गगन में गाजे है;
मधु वन में मुरली बाजे है. (गीत)
इस का नाद हृदय में गाजे है.
मधु, वन में मुरली बाजे है.

(थोड़ी देर में धुन की खुमारी उतरती है.)

आज वीरेन्द्र होता तो?
आशापूरीने आशा पंखाई सही.
जगज्जननीने उच्चारण किया कि
प्रेम मन्दिर की आरती प्रेम कुंज में ही है.
गायिका जी की रस सुनरी

और श्रीकृष्ण चन्द्र का प्रेम मकुट मिले
स्वयं मिलजायगो वह,
और प्रकटेगा प्रेम मन्दिर का अखंड ज्योति दीपक,
वीरेन्द्र ! वीरेन्द्र ! वीरेन्द्र !

कुमारीः—और यह वीरेन्द्र कौन ? देवसेविके !

(सूने खेमों की एकान्त में भी मानवी की अवाज सुनकर सुहाग चौंकती है; कुमार कुमारी को पल्लव कुंज की वटाओं में निहार कर कह कहा लगती है. कुमार कुमारी जालीझूले से उतरती है.)

सुहागः—सूने हैं खेमों के आंगन
इस से माना था वन विहार को गये होंगे.
प्रेम मन्दिर का अखंड ज्योति दीपक वीरेन्द्र !
प्रेम कुंज का सूरज वीरेन्द्र !
कुंजें भी सव अंधेरी हैं
वीरेन्द्र विना की तो.
वारह-वारह वर्ष के मध्यान्ह तपे,
परन्तु वीरन्द्र के उषः काल के ऐसा भी
नहीं प्रगटाया पुण्य प्रकाश.

कुमारीः—वीरेन्द्र कहां विराजते हैं ?

सुहाग :—कहां आसमान के नीचे,
कहां सूर्य चांद के प्रकाश में;
पृथ्वी की किन्हीं पुण्य गलियों में:
प्रेम मन्दिर की आरती की खोज में.

प्रेम कुंज का प्रकाश वीरेन्द्र
वतन में से आज विदेशी है.

कुमारी:—तब प्रेम मन्दिर की आरती
किस तरह जाती रही?

सुहाग :—मनुजनयनों में के ईर्ष्या और जहर से.
सुना है–सुना है कुमारी!
प्रेमारती की शिखा प्रकटाती कोई सुन्दरी,
तो उसके नयनों में प्रेम ज्योति प्रकटती,
फिर बढ़ी सुन्दरियोंकी सौन्दर्य स्पर्धा
इस रसशिखा को प्रकटाने की.

बादमें सखियां मिटकर स्पर्धावालियां हुई,
और तोड़ने लगीं प्रेमारती की शिखाओंको.

रसिका माका हृदय टूट पड़ा,
प्रमुखपिता की उरसारंगी फूट गई,
देवबाला की मुख कोकिला गूंगी हो गई,

प्रेममन्दिर के सारसदम्पती भी उड़ गये
आकाश की ऊंची घटाकुंजोंमे.

इस तरह आरती जाती रही—लोप हो गई.

चन्द्रमुखियों के चन्द्रसे वदन
तारिकाओंसे मन्द पड़ गये,
और प्रेमपूजाके नवपल्लव
प्रेमकुंजमें ही कुम्हलाने लगे.

बन्द हो गया प्रेमसर का प्रेमोत्सव,
और बन्ध हो गये प्रेममन्दिर के भी प्रेमद्वार.

फिर न तेज—न अन्धकार
ऐसे तेज—अन्धकार दोनों की
माया—छाया सी सन्धिका
प्रेमकुंज की घटाओंमें उतरी.

वीरेन्द्र आवेगा कभी,
खोलेगा प्रेममन्दिर के द्वार,
और प्रकटावेगा उजेलेको,
कि जो निरन्तर प्रकाशित रहता है
प्रेमयोगियों के उरमन्दिरोंमें.

कुमारीः—प्रेमारती कैसी थी?

सुहागः—देखी नहीं प्रेमारती जिसने
उसे इसको किस विध बतलाऊं?
और मैंने भी देखी थी
स्मरण भी नहीं आता है तब
बचपन की बिल्कुल बेसमझी में,
देखी–न–देखी सी:
फिर तो बातें सुनी हैं सहेलियोंकी.

रातमें आसमान में ज्योति के झाड़ लटके,
रसिकों के नयनोंमें ज्योति झाड़ प्रकटें,
ऐसा था अनमोल यह भी
प्रेममन्दिर का छोटासा झाड़.

नववधू के वदनपुष्पपर किरमंडल स्फुरित हो,
प्रेमियों के भाग्य देशमें देवकिलंगी चढ़े,
पूर्णिमा के प्रोज्वलप्रभा पल्लेमें
सोलह पांखड़ीयोंवाला चन्द्र सोहे,
वैसी थी यह प्रेमारती
प्रेममन्दिर का सोलहपंखड़ी तेज–कमल:
मानो ज्योतियों की मंजरीका गुच्छ.
सूर्य देखा ही नहीं,
उसे किस विध बताओगे सूर्यज्योति?

रसेशने कुंजें खोजी हैं,–
अश्वत्थ के पास, खोज जान पडते थे वहां,–
प्रेमसरोवरमें भी डुबकी लगाई है,
रोती वंसी भी बजाई है;

परन्तु वृथा, सब वृथा. सुनो:
रसेश ने गीत गाया है प्रेमज्योतिका.

(प्रेममन्दिर की प्रेमज्योति का गीत गाती है.)

अहो प्रेमज्योति ! परमप्रेमज्योति !
महाविश्व तव आरती वधावे:
चारु रविचन्द्र की कान्तिको मन्द करे
तव लोय ऐसी जग भावे. ध्रुव.

आत्माके किरण जगदात्माके किरण संग
आयुभरकी गूंथे ग्रन्थी,
ज्योतिमें ज्योति मिल होय उद्योत
उसे पारखें प्रेमके पंथी:

अहो प्रेमज्योति ! परम प्रेमज्योति !
हृदयके धाम औ नयनझरोखे
और गगनचांदनी के खोले
सकलरससार संसार सिंहासन पै

झूलते दीप अमृत ढोळे:
अहो प्रेमज्योति ! परम प्रेमज्योति !

कुमार:—तो वीरेन्द्र प्रेमारती खोज लायगा ?

कुमारी:—या रसेश प्रेमारती फिर प्रकटायगा ?

सुहाग:—वीरेन्द्र प्रेमकुंजकी वीरता है,
रसेश प्रेमकुंजकी कविता है.
वीरेन्द्र लोकसंघका बाहु है,
रसेश लोकसंघकी प्रेरणा है.

वीरेन्द्र है सफरी जहाज,
रसेश है उछलता हुआ फव्वारा.
वीरेन्द्र करेगा, रसेश प्रेरेगा.

कुमार:— वीरेन्द्रके बिना कुंज तो सूनी है.

सुहाग:— बारह-बारह बरसकी बातसे वीरेन्द्र,
वायुसा, पृथ्वीका है प्रवासी.
प्रेमकुंज की ठठरी ही रहीथी
प्रेमसर के इस महाप्राणके जानेसे.
रसेशने आकर फूंक मारी,
सजीवन की हमारी रसकुंजों को:
रसेशने और रसेशको बंसीने.

कुमारी:—रसेशने सचेत की प्रेमकुंजको ?

सुहाग:—रसेश के वंसीबोल से तो
पत्तो-पत्ती झूमती है प्रेमकुंज की,
पँखड़ी-पँखड़ी फरफराती है
प्रेम सरोवर के जलकमलों की.

कुमार:— और रसेश का रस निवास है कहां ?

सुहाग:—प्रेम कुंज की गहन घटाओं की
गोंद में है रसेश का रस निवास.

इस तलाव के तीर—

कुमारी:—यह पानी तो सिकुड़ गये
प्रेम सर के जल तो नकुछ हैं.

सुहाग:—वीस-वीस वर्ष से लगा तार
मानो दुष्काल पड़ रहा है
प्रेम कुंज की घटाओं में, सरोवरो में मानवीओं में.

तालाव का जल ओछा है,
परन्तु प्रेम सरोवर की पाताल धरा के पानी
इन घाटों के नीचे तो है
अखूट है; अगाध हैं, अतल है.

देव बाला की गुफा और पर्णकुटी;

और ऊपर झुक रहा है
रमेश का रसझरोका.
इस समय तो प्रेमसरोवर के अश्वत्थकी शाखामें
यह पढ़ रहा है रमेश पानोंकी पुस्तकोंको.

कुमारीः— पानोंकी पुस्तकों को!

रमेशः— (अश्वत्थ की अटारीसे)

ऊर्ध्वमूलमधःशाख-
मश्वत्थं प्राहुरव्ययम्;
छन्दांसि यस्यपर्णानि
यस्तं वेद स वेदवित्.

हां, राजकुमारी! पानों की पुस्तकें,
अश्वत्थसंहिताकी ऋचायें,
प्रकृतिके ये तो हैं परमशास्त्र.
पढ़ो, समझो, उकेलो, जगलोको!
पत्थरोंमें के पुराण,
और पत्ररेखाओंमें के ब्रह्मसूत्र.
(बंसी बजाता है और फिर उतरता है.)

कुमारीः— (स्वगत)
तब तो सुने ही होंगे तो

सरसभूमि सी विशाल है चांदनी .
रसपथिक यहां पधारो चितधनी !
परमप्रेमके पुजारी हों तो आइये !
हृदयथाल भर पूजावस्तु लाइये !

रसेश:- (एकाएक मानो रससमाधिमें से चौक जगा हुआ सा)
पधारता है, पधारता है.

(मानो कुछ, दूरके शब्द सुनता हो इस तरह पृथ्वी की ओर कान लगाता है. नाचता है, कूदता है, बंसी बजाता है, रसानन्दकी मस्ती में आ जाता है.)

सुहाग:- कौन पधारता है? रसेश !

रसेश:- आता है, यह आता है.
रतन गायोंमेंसे लौटी है.
सूनी दिशायें खोजती है,
आशापूरी के चबूतरे पर बाट देखती है
बारह–बारह वर्षोंके मध्यान्होंसे
प्रेममन्दिरकी सीढीपर बैठी बैठी.
आता है इसकी आशाओंका आनन्द,
इस जोगनका जोगी.
प्रेममन्दिर के द्वार बन्द हैं, खुलेंगे:

प्रेमपूजा अस्त हो गई है, आदर पायगी.
आता है, यह आता है,
प्रेमपूजाका पुजारी,
प्रेममन्दिरका महन्तः
दूरसे समीप, बाहरसे उरमें,
पृथ्वीमें से प्रेमकुंजमें.

(दिशादिशाओंमें से कुछ सुन रहा हो इस तरह चारों ओर कान लगाता हुआ अश्वत्थ की चोटी पर जा चढ़ता है, पल्लवोंमें अदृश्य हो जाता है और पलभरमें सूनी दिशाओं की ओर निहारता–खोजता, 'पधारता है,' 'पधारता है,' के शब्दध्वनिसे आसमानके परदों को जगाता, प्रेमकुंजकी घटाओंको गजाता, बंसी बजाता हुआ रसेश अश्वत्थकी अटारी पर दर्शन देता है.)



अङ्क २ रा

प्रवेश १ ला

प्रेमसर का मार्गः

मझरात का चन्द्रोदय

(कालदृष्टि के अन्धेरे वन की झाड़ियों में होकर झीने–झीने प्रवाहके झरने झर रहे हैं। अन्धकार के किनारों के ऐसे सरितातट खड़े हैं। उन दोनों पर पंथ–कमान झुका कर वेलोंसे छाया एक पुराना लकड़ीपुल झुका हुआ है. जलझरे के ऊंडे देवदह के तीर, कंकर पत्थर और टोलों के बीच शिलाशय्या पर झोली सिरहाने लगाये एक योगीन्द्र पोढ़ रहे हैं. पितामह के से घेरगम्भीर वट की तटशाखायें व्यजन करती ऊपर हिल रही हैं. बगल में सारसदम्पती स्नेहसमाधि लगाये खड़े हैं. सब पर मझरात का गहरा अन्धकार छा रहा है और अन्धकार पर ताराओंका चमकार चमक रहा है.

सबको भेदती हुई कोकिलकी कुहू उछल रही है.)

योगीन्द्रः– (झबक के जगते हैं, शिलाशय्या पर बैठे हो जाते हैं और एक हस्तकमल कुंजकी दिशामें फैला कर)

आता हूं, अभी हाल आता हूं.

(सिरहानेसे झोली को गोदमें लेकर)

बारह–बारह बरसों की मेरी यात्रा के धन !

अपने शिर पर चढ़ा कर ले जाऊंगा प्रेममन्दिरमें.—
गैब की कोई आवाज़ सुन पड़ती है:
आकाशमें से आमन्त्रण अवतीर्ण होते हैं:
वन-वन बुला रहे हैं कि 'आ.'
यह तो मेरे वतन की कूक;
क्षितिज से प्रेमकुंज बुला रही है..
प्रेमसर! मैं आता हूं हो!

(वट की पल्लवजटामें फड़फड़ाट होता है और फिर एक वार गहन नीरवतामें कोकिला बोल उठती है.)

यह तो प्रेमकुंज की कोयल!
मझरात का अन्धकार—जलमें उछलता,
अन्तरिक्ष के शिखर—घाटमें उड़ता,
अन्तर की अन्तर्गुहाओं को वेधता,
यह तो है कुंजकी कोयलका टहुका.
ठीक उतारी थकान की भी नींद..
—अहो यह अद्भुत शय्या!
प्रकृति माताकी गोदमें भव्य शयन!
वनकुंज के सरिताचोक के बीचोंबीच
मरकत मणिका पाट;
माथे मन्द-सुमन्द घूमता
वटशाखा के झूमखों का पल्लव पंखा;

बगलमें जल झरनेका मधुर कलरवः
अद्भुत ही है शिलापाट की
अवधूत की यह योगशय्या.
छलवलते जलबिन्दुओंसे लाओ,
नयनों को छांटूं, शीतलकरूं, और खोलूं.
आंख ! निरख पीछी अब
प्रेमकुंज की गहन इन वनघटाओंको.
(जल के पास जाकर अक्षिप्रक्षालन करता है.)
यह झर तो मेरे प्रेमसरोवर का है.
पानी भी पहचान में आते हैं ये पुण्यमय.
ये तो प्रेमवती के हैं नीर.

बोलो देवबालकों की बोलीमें,
प्यारे वतन के ओ नीरो !
क्या हाल हैं प्रेमकुंज के ?
बोलो, बोलो, ओ जलकी जलदेवियो !
बोलो, इस प्रेममन्दिर के सन्देश !
(दिशादिशाओं के आसमान निहारके)
आधीक रात बीती है,
मझरात मजा लूट रही है गगन के महलमें.
मेरी भी गर्जती है जीवन की मझरात.

अभी तो ऐसे ही घनान्धकार
पड़े हैं घेर कर जीवनवन को.
बारह–बारह बरस बीत गये
प्रेमसरोवर से प्रयाण प्रारम्भ किये,
और लाया भी तो केवल एक
राधिकाजी की रसचूनंडी.
मैंने भी देख लिये,
आकाश के अनेक रंगवाले स्वस्तिक–से
भारत के वे वे महाभाव स्वस्तिक;
इतिहास के अद्भुत आंगन के,
भूगोल की भव्य कुराईसे शोभित चौक भरते
क्षत्रियतीर्थ उदयपुरमें निहारे
सूरजवंशी सरोवर महल.
वीरों के वीरत्व के जगमन्दिर.
आरावल्ली की गिरिवेलकी वनगूंथणी के बीचोंबीच
किये एक लिङ्गजी के देवदर्शन,
प्रताप के महा प्रतापी स्वयंभू प्रभु के.
हलदीघाट के मुखद्वार पर सुना
बाईस हजार बख्तर धारियों के रण का प्रतिनाद,
टकराता और घूमता गिरिगिरि की गुफाओंमें.

विश्ववन्दनीय चितोडराज की
वीरत्व की चिताभस्ममें देखा
अवशेष एक अंगारे सा सुलगता,
पृथ्वी की सर्वश्रेष्ठ प्रेमसन्यासिनी
भगवती मीरांका कृष्णमन्दिर;
और अग्नि मुखमें—से बचा हुआ एक
कुम्भा राणा के यश—अपयशका कीर्तिस्तम्भ.
' गढ तो चितोड गढ
और सब गढैया हैं. '
चौहान कुल के कीर्तिमहाभारत-से
उत्तंग तारागड के भी बांचे
वृद्ध खंडहर के महा रासे.
दिल्ली—आगरेमें जलते हुए दिलसे देखे
द्रौपदी और संयुक्ता के,
नूरजहां और मुमताज महल के
देवाङ्गना की विलास कुंजों-से
शहंशाही रंगमहलों के खंडहर.
अग्रवनमें से मधुवनमें गया.
राधिकाजी के रसपाट पर अब
विराजते हैं वहां लक्ष्मीजी.

वृन्दावन के रसोद्यानों में पैर रखते,
गोपीचन्दन के गौरकुंड पारकिये बाद,
कुछ और ही उड़ता निरखा उजास.
हंस रहाथा सारा-का-सारा वातावरण
विलोलतर किसी मन्द-मन्द रसहास्यसे.
भरे हृदयसे, गहरेरंगसे,
और धीरगंभीर चालसे,
वहते हैं व्रहां जमनाजी के नीर-प्रवाह.
पड़ा रहा तीन रात
कालगुफा-से कालिन्दी के धरातीर पर,
और नाथे उरमें-के विषधरों को;
विचरा फिर ऊंडी-ऊंडी
व्रजचौरासी की वनघटाओंमें.
गहनता, अगोचरता, भेदमयता,
उड़ रहीथीं वहां पल्लव-पल्लवमें.
क्या आताथा दिशादिशामें से
निगूढ निःशब्द इन्द्रियों से पर
पुराना-पुराना यह कृष्णसन्देश !
आत्मा गाज उठा कि
वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम्.

जमना के भारी जल छानकर पिये,
और भरली हृदय की मथनी
इन त्रिभुवनवंद्य रस गोरससे.
अनुभव किया इनका अद्भुत और सर्वपूज्य
जगत कवितामें का परम नायकत्व.
मनुवंशमें का महाभाव मनमोहकत्व.

जगत की रसनगरी का
यह तो सुन्दर रसराज है.
पहले पागल किया था गोपग्राम,
पागल किये हैं वैसे ही आज
सारी जगन्नगरी के चोक
इन की सकल-संचारिणी रसवंसरी ने.

बरसाने के राधामन्दिर की धूप-छायामें
बिराज रहेथे टेकरी शिखरपर
चकवा चकवी के स्नेह-दम्पती,
और खेल रहेथे रंगभरे
पुराने-पुराने इस प्रेमवार्ता के खेल.
निरख रहा इस स्नेहलीला को
अनिमिष और रसमुग्ध नयनसे.
काला बिछाया था, आसमानसा,

रत्नों जड़ा हुआ कोई रेशमी गालीचा,
और ऊपर थनगन करते थे चकवा चकवी.
पांखोंमें पांखें पिरोपिरोकर
नमती हुई सांझ के केसरियां झरनोंमें
न्हाते न्हाते, झरसे रहेथे.

आकाश की चांदनीओंमें से
सांझ उतर आई मेदसे भरी हुई.
दिशा दिशामें उभरा रहीथी सांझ
और उड़ कर निवृत्त हुए प्रेमी कल्लोल करते थे
हरियाले रस सुहावने वनझरोखोंमें.

जाकर देखा शिखर पर तो
चूनडी का हीरा जड़ा पल्ले का छेड़ा,
नागन के फन के ऐसा
पृथ्वीमें-से छुपछुपकर ताकता सा देखा.
प्रारब्ध की शाखा देखी, वृक्ष पाया.
शिखर के इस देव तैखानेमें-से
अखंड चूनडी मिली, तो जाने,
आज की जगमगा रही है ऐसी,
तारिकाओं से मण्डित काली मझरात.
ब्रह्माण्डने भी ओढा है ऐसा चोरस शाल.

रक्खी इस रात्रिरंगी चूनरी
जा कर राधामन्दिर के महन्त के चरणमें.
गुण गंभीर और भार सहसकने वाले
साधु मुद्राधारी उस परम वैष्णवने
पहचानी, परखी और बात चलाई.
स्वरमें विकार नहीं, सन्यास था.
सन्त जनो ! वही है यह रसचूनड़ी
कि जिसे राधाजीने पहिना था
प्रेमोत्सव की महारात्रि को प्रेमवनमें.
इस महोत्सव के पर्व पर प्रतिवर्ष
गोलोकमें से पधारती हैं रसिकप्रियाजी.
वैष्णव जन ! तुम्हें मिली इस लिये है तुम्हारी ही.
हमने तो खोही दीथी खुलेवनमें;
तुम्हें दी स्वयं श्रीहरिने.
शुभका सङ्केत होगा इस कृपाप्रसादमें.
राधेश्याम ! जय राधेश्याम !
बोलो, राधामन्दिरके रसजोगियो !
राधेश्याम ! ' ' राधेश्याम ' की धुन लगी,
और गाज उठा राधामन्दिर
' राधेश्याम ' के महाध्वनिसे.

झोली भरी है मुज जोगी की
राधिकाजी की इस रसचूनडीसे.
सौंपूं जाकर प्रेमकुंजके प्रेममन्दिरको,
संभाल कर रक्खेगा और सुहायगा.
फिर आदरूंगा फिरसे योगयात्रा
कृष्णचन्द्रके प्रेममकुटके लिये.
पूरी होगीभी यह अधूरी योगयात्रा ?
या '**मम माया दुरत्यया**' कीभांति
योगमाया के अगाध जलधिजलमें
डूबकर ही मरना है मानवीको
परमतीर्थ के किनारोंको खोजते खोजते ?
घड़ी भरके लिये मेरे पैर
लौटे हैं वतन की तरफ.
यही है वह आयुष्यजूना पुल,
और यही है वह उछलता—कलकल करता
प्रेमसरोवरका कुंज—जूना जलझरना.

(प्रेमसरोवरका नाम सुनकर सारस पांखोंको फड़फड़ाती हैं. उन्हें देख—पहचानकर)

और मेरी शिलाशय्याकी रखवाली करती
प्रेममन्दिरकी यह साथ पैदा हुई सारस जोड़ी.

आओ, पधारो मेरे हृदयके उत्सङ्गमें.
(सारस को गोदमें लेता है)
बारह-बारह बरसमें वतनमें आते हुए
तुम्हारा मुझे मिलता है पहला सत्कार.
कैसे पोढे हैं हृदयकी शय्यामें?
ये तो मेर जूने स्नेही जन हैं.
(लाड़ करता है, हाथ फैरता हैं.)
जाओ जताओ स्नेहकुंजको:
मैं पैदल चलकर आताहूं,
तुम्ह पांखोंसे उड़कर जाओ
सनातन प्रेमसरोवर के तीर.
कहना, आता है और लाता है
राधिकाजी की रसचूनडी.
जाओ, प्यारे इस वतन में.
जाजो, रस झरने के रसदेशमें,
प्रेमवती के प्रेमवनमें,
और दिखलाना प्रेमकुंजका पंथ
पृथ्वी के परिक्रमानिवासियोंको.
(प्रेमसरोवर की ओर सारसोंको उड़ाता है. सब समझते हों वैसे वेभी वनवन वेधते प्रेमकुंजकी ओर चले गये. क्षितिजकी रेखा पर अष्टमीके चांदकी नाव तिरती तिरती उदय हुई.)

उगा, उगा अवनी के किनारे
सकल सर्जन का यह सुधाश्रृंगार,
प्रकृति देवीका यह ललाटतिलक
ब्रह्माण्डका अमृत भरा सौभाग्यचंद्र.
मानो चन्द्रिका का सरोवर.
ये चमकेगा तब तक तो
प्रकृति–सुन्दरी है सौभाग्यवती,
रात्रिके इस अन्धकारयुगमेंभी.
प्रकृति देवी के ओ परम–सौभाग्य!
वतन–प्रेमकुंजमें मेरे पीछे लौटते हुए
तेरा है मुझको दूसरा सत्कार.

(पुलकी ओर देखकर)

यही है यही पुरातन पूर्व–परिचित पुल,
जीवनतटों की पन्थकमान के ऐसा,
शाश्वत और सुहावना.
कोटरों में मैना तोते उडते हैं,
कबूतर गूंजते हैं
इसके लता–झरोखोंमें विराजकर.
पौढ़ रहे है–पौढ़ रहे हैं सब इस समय
प्रकृतिकी गोदमें ये रस–बालक.

हां ! वही है यह जीवनजूना पुल.
प्रेमवती के पुरातन पानी को
सुर–धनुष्य सा उलांघता हुआ
जोड़ता है प्रेमवती के दोनों किनारोंको.
दिखलाता है, जगतकी योगनिद्रा सा,
प्रेमयोग का पन्थ पृथ्वी–प्रवासियों को.

(प्रेमसरोवर की ओर देखता रहता है.)

वतन ! हां ! प्रेमियोंका प्रेमवतन !
विश्वभर के सब गुरुत्वाकर्षणका
वतन तो है मानो मध्यबिन्दु.

चलो वतनकी फिर कुंजें देखें
आज प्रेमभूखे मेरे नैनाः
चलो वतन के विश्राम स्थलमें फिर
विरमें आज पन्थथके मेरे नैना.
कुछ कुदरत लोलविलोल लखी
कुछ सुन्दरता अतिरम्य लसी
पर वात वतन की मिष्ट वडीः
आज प्रेमभूखे मेरे नैना.
दिनमें कुछ शोभित भूतल था
कुछ रात-सुशोभि नभस्तल था

पर याम घड़ी सब शून्य हि था
  आज पंथ थके मेरे नैना.

यह बालपने की सब यादें !
यह यौवन के रसकी बातें !
दृगदृगसे बहे प्रेम झरें !
  आज प्रेमभूखे मेरे नैना.

नमस्कार है तुझे शिलाशय्या !
उग गया आकाश के मीनार पर
पैर में ज्योत्स्ना फैला कर पंथ दिखलाता,
अमृत का अक्षयपात्र सा, चन्द्रमा.
प्रेरेगा और ले जायगा मुझे भी
प्रेमकुंज के परम मार्ग पर.

(पगडंडीसे पुल पर चढ़ता है.)

मेरा वतन, और मेरी रतन.
कोयल की सी उड़ती थी ये प्रेमकुंजोंमें.
दिल ! धैर्य धर, धड़के मत;
उतार नही दिये हैं योगीन्द्रने अभी तक जोग.
सब शुभके ही समाचार हैं.

वतन ! हाश ! मेरा प्यारा वतन ।
प्रेमसर तो है पुरातन वतन
जगत की मानवजाति का.

(योगीन्द्र पुल पर होकर प्रेमकुंज में सिधाता है. पीछे कलकल करती झरण और चन्द्रप्रकाशित किया हुआ अकेला शून्याकार रहता है.)



अङ्क २ रा

प्रवेश २ राः

सहस्रधारा

(गहरीकुंजों में प्रभात के ब्रह्ममुहूर्त में जलधारावली के फव्वारे उछालता हुआ सहस्रधारा का प्रपात गड़गड़ाता हुआ गिरता है और जलकिरणों की रेखाके ऐसे चमकते जलके फव्वारे अधर उड़ते हैं. भोर का चांद, मुख देख कर पृथ्वी के संवरने का देवदर्पण के ऐसा मध्याकाश में लटक रहा है. दूर गोमती के जानुपरिमित जल-स्थल में हलकी काली बद्लोंकी छाया पड़ कर प्रेमवती के नीरको मैला करती है। नीचे–गहराई में जलके किनारे बैठ कर रसेश जलप्रपात की पड़ती हुई सहस्रधाराओं को निहार रहा है, उनकी छिंटाती हुई बारीक बारीक जलकणिकाओंका सत्कार करता है: और पृथ्वी के नाभिकमलमें से या दुनिया की दिशादिशाओंमेंसे रुदन आ रहा हो ऐसी जगद्रुदनभरी विषादबंसी, बीचबीचमें अलख का गान गाता गाता, बजाता है.

रसेश के निरन्तर के आनन्दमें आज, कोई कोई बार उभर आते हैं वैसे, गहरी न्यूनता और खिन्नता, अगोचर शोक और निराश, जम गये हैं.)

रसेशः—खड़ा हो द्वार पर तेरे जगाया है अलख सांई !

(भारी बंसी बजाता है.)

जगत के चौकमें मैंने जगाया है अलख सांई !

(रोती कोयल वंसीमें बोलती है.)

न ली मैंने कहीं ! दीक्षा, न मैंने ओढ़ली कफ़नी
तुझे, हूं नम के वैसेने, जगाया है अलख सांई !

(उतरती ग्रीष्म में पपैया पुकारता है वैसे 'पीपी' 'पी' वंसीमें पुकारता है.)

कमंडल है मेरा खाली भरा अक्षय तेरा पात्र
लखी भंडारमें भिक्षा जगाया है अलख सांई !

(रुदन करती बंसी बजेही जाती है. प्रेमसर के तट पर और प्रेमकुंज की कुंजोंमें इस रुदन का वंसीरव गाजता फिरता है. जल्दी उठे हुए किसान कंधे पर दांते रख कर ऊपर किनारे पर खड़े हो पातालजल के गहरे किनारे की ओर देख रहे हैं.)

एक किसानः—

जोगी हुए विनाके इस जोगी के
जोगगीत तो देखो !

रसेशः— गगनछाई घटा गहरी न आँखें भेदतीं मेरी
श्रवण भेदेंगे तब उनको ? जगाया है अलख सांई !

(चलता हुआ पवन रुकासा जान पड़ता है. मानो जगतके रुदन को सुनने के लिये ही न ठहर गया हो. कुदरत के महाचल भी घड़ीभर ठहरे से जान पडने लगते ऐसी गीत और वंसी की लय जमती है. सहस्रधारा के जलकी, और जल पर के चन्द्रकी चन्द्रिका की, सहस्रधारायें वरसती ही रहती हैं.

भोर के चन्द्रतेज में सहस्रधारा के जलप्रपात को निरखने के लिये कुमार और कुमारी आते हैं और दोनों ही आश्चर्यमुग्ध हुए टकटकी लगाकर जड़वत् खड़े रहते हैं.)

तू दिलदरियाव है दाता वड़ा अद्भुत तुही यजमान
अणुसा तो अभी कण दे जगाया है अलख सांई !

कुमारीः— कैसे ये हृदय विदारक रुदन
निरन्तर के कल्लोलने गरुड़राजके ?

कुमारः— प्रत्येक मनुष्यात्मामें बसे हुए
ऊंडे—वहुत ऊंडे जगरुदन का
यह तो है हृदयझरा.
सारी प्रेमकुंज की मानो पुकार.

रसेशः— चढ़ाई पावड़ी जगमय प्रवृत्तीकी उसी पे चढ
वढ़ाते जिन्दगी आगे जगाया है अलख सांई !

(प्रेमकुंज की दिशाओंमें से चीस सुन पड़ती है. सहस्रधारा

के जलको हिलाती घटाकुंजोंमें प्रतिध्वनि करती अन्तरिक्षमें चढ़ कर बन्द हो जाती है.)

रतन:— प्रेमकुंज का दूसरा जीवनधन
अहह ! आज बिखरे जाता है.
जगतभर की पुकारसे वंसी नोतती है जगत को
कि आओ, आओ, और उद्धारो.
वंसी बुलाती है, मैं जाती हूं.

(घटाओंमें से रतन सहस्त्रधारा के किनारे उतरती है और पल्ले के पंखेसे रसेश को हवा करती हुई आश्वासन देती है,)

रसेश:—नहीं कुछ भी मिला तो भी मिला दर्शन मिली आंखें
मिली-चमकी नज़र मैंने जगाया है अलख सांई !

कुमारी:—यह कैसी ग्रामवासियों की लीलायें !
रसेस वंसी को रुलाता है,
और रतन पवन करती है.
रूप भरे सोहते हैं श्याम और राधाः
मानो श्रीकृष्णजी के मनाने पर पधारी
रसभीनी वृषभानु दुलारीजी.
कहां से आवे गांवडे की गोरी को
नगर का यह नागरिकत्त्व ?

कुमारः— जगत–शोभना सी सोहती,
सुन्दरी–संघमें सौन्दर्य–मूर्ति सी,
कविता–कला की परमपुत्री शकुन्तला
कौनसे नगर की थी नगरकन्या ?
सिक्का खनखन करे ऐसी.
राज्य लक्ष्मी सी खनखन कर मत.
नगर को क्या इस वन की ईर्ष्या !
मथुरा नगरी की हवेलियोंमें तो थी कुब्जा,
और गोकुल वृन्दावन की वनकुंजोंमें
प्रफुल्लित होती थीं गोपिकाओं की पुष्पलतायें.
बगीचियोंसे वन घटेंगे नहीं:
और न घटेंगी इसी भांति
पुर–कुमारिकाओंसे वन–कुमारियां.
सरिताओं के सौन्दर्य रूपसे नहीं बढ़ सकते
पाल बांधे हुए सरोवर या स्फटिक कुंड.

कुमारीः—तो परनलो न किसी वन–कुमारिका को ?
कुंजमें कलोल करती किसी शकुन्तला को ?

कुमारः—राजकुमारी के वनगोप के वेणुबाण लगे,
तो राजकुमार को भी दंश देवे ही
किसी वनगोपी के सौन्दर्यडंक.

(बंसी में रुदन हो रहा है.)

अर्जुन के विषादयोग की–सी विराजती है
रसेश के रस सागरमें भी
गहरी न्यूनता और खिन्नता:
जगतमें ' है ' उस का असन्तोष.
आशावादी की आत्म–गुहाओंमें भी
छुपे रहते हैं शोक और निराशा,
और किसी धन्य पलमें उभर आते हैं ये
पाताल–गंगा के पानी के ऐसे.
आनन्द और विलास से सजाये–शृंगारे
जगत महलोंमें का हृदयविदारक रुदन,
उत्साह और उमंग के अमृत पिलाने वाले
कवि के अन्तर के ज्वालामुखी,
हास्य के परदेमें बसा विषाद,
संन्यस्तमें रही भीषण विश्वनिराशा:
ब्राह्मण के परम-ब्रह्मानन्दमें,
ब्रह्मकृपा हि केवलं ' में,
ऊंडे जलमें डूबी हुई शैवाल–से,
निरन्तर छुपे हुए प्रोत्साहन के ज्वार:
कभी अनुभव किये हैं राजकुमारी ! ये सब ?

महात्माओं को सुननी पड़ेगी
जगतमें के जहन्नुम की हाय.
कृष्ण प्रभुने सुनी, बंसीमें बजाई,
बुद्ध प्रभुने सुनी, भेख लिया.
वैभव के सुहागी फूल मंडपमें भी–
तिमिर पत्रों की रेखायें तिरमिराती हैं.
जगत कहते जन्नत और जहन्नुम
जगत कहते अमृत और ज़हर.
जगतमें–के अन्धकार–सा
निराशावाद भी खोटा नहीं है.
मार्तण्डराज की घूमती हैं महारश्मियां
सृष्टि की दिशा दिशाओं को उज्वल करती;
तो भी खड़ी हैं फिरती,
गहरी, भारी और आच्छादित करती
अप्रकाशित आसमान की
अतल जल भरी अन्धकार गुफायें.
आज उभरा रही हैं ये,
रसेश के उर सागरमें से.
कवि के नयन–कीकी–सरोवरमें से,
बंसी के छिद्र छिद्रमें–से,

उड़ रहे हैं रुदन सौरभ महकते हुए
आत्मान्धकार के ये फव्वारे,
प्रेमकुंज की महावन घटाओं को पूर पूर के.

रसेशः— ऊंडी झोली अधूरी ही रही कुछ तल जरा भीगाः

कुमारः— प्रेमानन्दमें बसाये शोकगीत.
मेरी भी ढसी जाती हैं
अन्तरमें की खड़ी दीवालें आज;
पिघल पड़ते हैं मेरे भी आज
छोटी दृष्टि मर्यादा के कोटकंगुरे.
सरोवर की पाल टूटते
जलपूर उमड़े पृथ्वी भरमें,
ऐसे छलक के उछलते हैं
आत्म–सरोवर के महानीर
लोकसंघ के पृथ्वीतलमें,
प्रजाकल्याण के महाचौकमें.
प्रजासंघ की नाड़ी के साथ
धड़कने को वेगसे बढ़े जाते हैं
मेरी नाडियोंमें के रुधिरपूर.
वंसीछिद्र के ऐसे छेद होते हैं
सहस्रधारा सी धारायें उडती हैं हृदयमें.

दौड़ता है आत्मा वस्तीमें जाने को.
सुनता हूं आज विश्वप्रेम के बंसीनाद.

(झरणे के टीले से उतर के रसेश के पास जाता है.)

रसेशः—मिला जीका जीवन मेरा जगाया है अलख साईं !
मिलाजी का जीवन मेरा—
मिलाजी का जीवन—
जी का जीवन—

(धुनमें और धुनकी चालमें बंसीको रुलाये जाता है. प्रभात-स्नानको पधारा हुवा लोकसंघ टेकरीके किनारे किनारे खड़ा होकर गहराई की ओर निहारता है.)

रतनः (कुमारको)
ये तो शोकसमाधि लग गई है.

कुमारः—जगत के पैगम्बरोंके भाग्यमें
लिखा है रोनेका लोकसंग्रह के लिये.
महाराज कुमार सिद्धार्थ रोये थे,
कवि कुलजनक वाल्मीकिजी के भी
द्रवित होगये थे दिलके मेघ.
आकाश—उदार जगदुद्धारकों के तो
रोम रोममेंसे झरते हैं

आत्मा के झर जगत भरमें बहने को.
हिमाद्रि शिखरके हिम पिघलें,
और गंगादि नदी बहे जगगभीरा
देश देशको-प्रजा प्रजाको पानी पिलाती,
महात्मा भी ऐसे ही द्रवित हो जल बहाते हैं.
वसन्त बैठने पर सहकार मोरते हैं
प्रफुल्लित होते हैं ऐसे ही करोड़ों फलोंसे
विश्व–हितचिन्तकोंके विश्वप्रेमके विराट वृक्ष.
रसेश के भी उभार आया है आज
दुनियाके दुःखोंका, जगतरुदनका, विश्वप्रेमका
शोकसमाधि कहते सृष्टिसायुज्यः

रसेशः— **जगतके चौकमें मैंने जगाया है अलख सांई !**
खड़ा हो द्वारपर-तेरे जगाया है अलख सांई !
जगाया है अलख साई !
जगाया है अलख साई !
अलख साई !
अलख....

रतनः— दिल की तपिशके ये उभरे.

कुमारः— जगतज्वालाओंके दावानलोंकी ये महाज्वालायें.

(पंचपात्रमें आशापूरीका चरणामृत लेकर सुहाग जल्दी जल्दी चलकर आती है.)

रसेशः— ओह ! ओह !

आसमानमेंसे यह रात उतर रही है;
बुझ रहा है–ओह बुझ रहा है
दिन के दिनमणिका हुताशन,
प्रभुकी परमज्योति बुझ रही है.

सुहागः—(प्रेमसर की गोमतीके कमलसे आशापूरीके चरणामृतसे रसेशका संमार्जन करती–करती)
देख तो सही रसेश !
आकाशके आंगनसे आज
रात उतर रही है, या उषा ?

(धीर–सुधीर रसेशकी शोकसमाधि उतरती है.)
आज तो सौभाग्य दिन उगेगा
प्रेमकुंज का और प्रेमसर का.
रसेश का रुदन व्यर्थ न होगा.
देख रात पूरी हुई जाती है जगतमेंसे.

रसेशः— (जागरित हो चारों ओर निहारकर)
हां, उषा उग रही है प्रेमकुंजमें.

मैं आया तब रात थीः
इस समय तो उषाका उदय है यहां.
पधारते हैं प्रभुके पूर
प्रेमसर के प्रेमनीर के तीरपर
मनुवंशकी महमानगिरीके लिये.

कुमारः— रसेश्वरजी ! धड़कती न होजायँ
कुदरतके हृदयके साथ
मेरे आत्माकी भो नाड़ियां ?
विश्व–हृदयके साथ मानव–हृदयका संवाद–मेल

रसेशः— तुम्हें तो सोहता है, राजकुमार !
प्रजाहृदयके साथ राजहृदयका धबकारा.
कविको योग्य है अनन्तके साथ एक–रसता,
योगीको योग्य है परब्रह्मके साथ एक–रसता,
राजाको योग्य है प्रजाके साथ एक–रसता.
राजधर्म कहते प्रजासायुज्य.

कुमारः— तो व्रत लेता हूं प्रजाजन समक्ष
कि प्रजाहृदयके साथ राजहृदयका
जीवन धबका जोड़नेको
परनूंगा मैं प्रजावर्गकी किसी पुत्रीको,
पृथ्वीपटमें की किसी सद्गुनी सीताको.

रसेशः— हमतो हैं प्रकृति मैयाकी सन्तान.
इसे धाकर उछरे हैं
और इसे ही धाकर जियेंगे.
सन्तोंके लिये सच्चिदानन्द है.
बहांयगे पुरपुरमें परमानन्दके पूर,
जीवजीवमें जीवनके उल्लास.
अखण्ड तो आनन्द ही है अनन्तमें.

कुमारीः—(सुहागको)
कुमारको यह सन्मार्जन न करो ?
इनकी भी यह न उतारो
शोक समाधिकी कन्था ?

(प्रेममन्दिरके पल्लवोंसे आशापूरी के चरणामृतद्वारा सुहाग राजकुमारका सन्मार्जन करती है. कुमार धूज उठकर मानो जग गये हों इसभांति भीतरकी आंखें खुले हुएसे होजाते हैं: किसी आश्चर्यको देख रहे हों इस तरह सुहागको निहार रहते हैं.)

कुमारीः—भाई ! सुहागको न परने तू ?
पिताजीने तो तुझे सौंपे हैं
वधूपरीक्षाके स्वयम्बर ?
कैसे कैसे जादू जानती है यह
प्रेमकुंजकी जादूगरी.

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि कचित्.

(रसेश गवाता है और सब परमानन्दका गीत गाते है.)

अहो ! अस्त होता मायान्धकार अंगअंगमें फुइयां छुटें:
दूर-दूर अनन्तकी पाल प्रभुकी प्रभायें प्रकटें.
देखो ! जागरित विश्व और, कुछकोटिकिरण सविता प्रकटे;
कुछ तिमिर हसे, कुछ जग विलसे:
देखो सागरगभीरे गगन तटे.
उधर क्षितिजकी पलकें भाई ! धीमेसे देखो उघडें:
देखो न ! ब्रह्माण्डकी द्दगपुतलीमें अमृतकीकिरणें चढ़ें.
जो फटती है गैबी गुफा, भीतर देखो !
नूरपूर उछलें, प्यारे !
कुछ अजब रसमें, यह दिल हुलसे,
देखो परब्रह्मके उजियारे.
अहो ! अस्त होता जग अन्धकार, आनन्दफवारे छ्टें:
दूर-दूर ब्रह्माण्डके पार ब्रह्मानन्द देखो ! प्रकटे:
दूर-दूर और आत्माके मध्य परमानन्द देखो ! उमड़े.

(सर्जनसायुज्य के मौजोंमें सब लहराते है.)

(अकेली-अकेली ही खड़खड़ हसती, देववाला प्रेमसर की ओर से आकर किनारोंकी पगदंडी पर चढ़ती है: चढ़ते-चढ़ते प्रभाकर को पूजती है.)

अङ्क ३ रा

प्रवेश १ ला

प्रेममन्दिर

(जमते हुए मध्यान्हमें प्रेममन्दिर के पुण्यचौकमें बालक खेल रहे हैं. मन्दिर चांदनी के कंगुरों पर सारसजोड़ी आ बैठकर वन-कुंजोंमें उड़ जाती है. दूसरे पहर की गाढ़ता होने पर सूर्यतेज की बढती हुई उष्मा वनचौक भरती हुई उभराती है.)

एक बालिकाः—

कहते हैं कि आज मध्यान्हको
प्रेममन्दिर के कुंकुमद्वार खुलेंगे.

एक बालकः—

कौन कहता है यह ? बता.

बालिकाः—लोक कहते हैं: कान हों तो सुन.

बालकः—क्या सुनूं ? कौन बोला ?
लोक ? लोक—अर्थात् कोई नहीं.

बालिकाः—भूलता है, तू भूलता है सबः
लोकवाणी कहते तो देववाणी,
प्रजाबोल कहते तो प्रभुबोल.

बालक:—तब तो अब देखेंगे:
देववाणी हुई है न कि
मध्यान्हमें खुलेंगे प्रेममंन्दिर के द्वार?
लेती जाना: आज तो खुलेंगे तब!
(लोगोंका एक समुदाय आता है.)

बालिका:—पवन की लहर लहर बोल रही है.
सुन, यही भाख रहा है
इस सारसजोडी का भी कलबोल.
प्रेमकुंजमें से पधार पधार कर
प्रेममन्दिर की प्रदक्षिणा करती है
प्रेम-आरती के दर्शन के लिये,
और चली जाती है पीछी प्रेमकुंजमें.

कुजोंमेंसे आये हुए

लोकसंघका अग्रणी:—
कहते हैं कि आज भोर समय
भूत निकला प्रेममन्दिरमें से,
प्रेमसर के पातालपानी में न्हाकर
प्रेममन्दिरमें पीछा घुस गया.

बालिका:—उद्धार हो गया इस भूतका भी.
आज सब भूतों का उद्धार होगा.

बालकः—परन्तु कहता है कौन
यह तो कोई कहो?
क्या प्रेमकुंज की गूंगी बोली?

बालिकाः—देखवाला भी बोलेगी देवके बोल.
रसेश के रसयज्ञमें कल
पूर्णाहुति की आरती उच्चार रही थी.
(लोंको का दूसरा संघ आता है.)

दूसरे संघका अग्रणीः—
देखी? कहते हैं कि
उड गई हुई सारसजोडी आ गई.

बालिकाः—ऐं! आवेगा इस तरह सभी गया हुआ.
अच्छा कभी खो नहीं जाता—सदा के
अजब है प्रभात ही आजका.
वायु अद्भुत बातें लाता है.

अग्रणीः—कल पूर्णाहुतिमें-से
ज्योतिःसत्व प्रकटा,
और प्रेमकुंजमें गया,
तभी से कुछ और ही उजेला हो रहा है
परम प्रेमधाम प्रेमसरोवर का.

(लोकसंघके सागरके किनारेतक यह बोललहर उछलती झिलाती जा रही है: 'आज वीरेन्द्र होता तो?' वीरेन्द्रके नामोच्चारसे घटायें भरा जाती हैं. इतनेमें ही परम उत्साहिनी रसेशकी बंसी बोलती है.

वालकः—कहांसे बोली यह बंसी?

बालिकाः–तुझे कहां दिखाई ही पड़ता है कुछ भी!
कोयल बोलती है वहांसे.

वालकः—बार बार मात करेगीन;
तो तो–
तूभी ऐसी ही है:
देख नहीं पड़ती और बोलती है,
कोई कोई वार, कुछ कुछ,
मेरे कानके परदोंमें.
–परन्तु तू सच्ची है हो!

अग्रणीः—रसेश की रसबंसी बोली,
भेदागई प्रेमकुंजकी गहरी घटायें,
और प्रकाशित हुए प्रेमसरके भी नीर.
देखो! प्रेमसरके बीच
और अश्वत्थके सिंहासनपर, ऊंचे:
यह बैठा प्रेमकुंजका रसजोगी.

(कुंजोंमेंसे आकर सारसजोड़ी प्रेमसर के घाटपर उतरती है. प्रेमदहका जल पी, प्रेममन्दिरकी परिक्रमा कर कुंजोंमें पीछी उड़ जाती थी वैसे न कर, प्रेममन्दिरके शिखरपर विराजती है. लोक-कुतूहलका उभरा चढ़ता है.)

दूसरा

अग्रणीः—देखो ! सारसजोड़ी भी पधारी
उड़गई हुई प्रेमकुंजमें पीछी.

बालिकाः—परछाई है कम-से-कम
और प्रकाश है ज्यादे—से ज्यादा.

बालकः—माथे विराजता है मध्यान्हका सूर्य.
और तू सच्ची तो है हो !

(आशापूरीके मन्दिरमें मध्यान्हका दुंदुभिनाद होता है, सुहाग शंख बजाती है, रसेश अश्वत्थ घटासे वंसी पूरता है. लोकसंघमेंसे झालर, झांझ, भेरी, पखावज, डफ, खंजरी आदिका; आकाशको विदारता हुआ महाघोष होता है प्रेमकुंजके चौरसे नकारखाना बजता है.)

सुहागः—(प्रेममन्दिरके द्वारपर कान लगाकर)
धीरे, जरा धीरे,
ओ अधीर लोकसंघ ! धीरे.
सूने सूने प्रेममन्दिरमेंसे
गूंजती है घंटारवको घोषणा.

(महाघोष बन्द हो जाता है, आसमानकी गहराई-सी नीरव शान्ति तत्क्षण फैल जाती है; प्रेममन्दिरमें से टंटोकरी का मंजुल, कलरव मात्र बोलता है. पलकभरमें, दो बदलियां अलग हो जाय वैसे धीमेसे, प्रेममन्दिरके दोनों किवाड़ खुल जाते हैं, और श्वेतजटा धारी पुराने योगीन्द्र द्वारके बीचों बीच आ खड़े होते हैं. पांखोंको फड़फड़ाती सारसजोड़ी भी शिखरसे उतर, द्वार के टोडेपर आ विराजती है)

लोकसंघः–(क्षणभरकी आश्चर्यमूर्छासे जागरित होकर)

जय प्रेममन्दिरके जोगीन्द्रका !

(झूमता–झूमता कोई मेघशिखर आवे ऐसे धीरगंभीर पैर रखते योगीन्द्र फर्शबन्द चबूतरे पर आते हैं, चबूतरेके किनारे खड़े रहते हैं.)

योगीन्द्रः–(मेघगर्जन से गंभीरनादसे)

जय प्रेमकुंजके महासन्तोंका !

जय प्रेमसरके रसेश्वरका !

जय प्रेममन्दिरकी प्रेमपूजाका !

सुहागः—जय प्रेमकुंजके योगीन्द्रका !

कि बारहवर्षमें भी द्वार खुले.

(कुमार और कुमारी योगीन्द्रको वन्दना करते है, योगीन्द्र उनको लोकसंघ के दर्शन बतलाता है.)

योगीन्द्रः—कल्याण हो, राजवत्सो !

राजवंशियोंको तो लोकसंघके दर्शन हैं योग्य.

अग्रणीः—क्या जटाधारी अवधूत !

ओ प्रेमदेवके जोगेसर !

उच्चारो अब इस प्रेमदेवकी कथा,

बोलो इस प्रेमपूजाके बोल.

(योगीन्द्र बोलते नहीं है. लोकसंघको ऊर्ध्वबाहु आशीर्वाद देते हुए प्रेमकुंज, प्रेमसर, और अश्वत्थ सिंहासनारूढ रसेशको हेरफेर कर क्रमशः निहार रहे हैं. लोकसंघको निरखते हैं. सुहागको दृष्टिमालेसे बँधते हैं. मरी हुई प्रेमकुंजमें भी कुछ मूल जान पड़ती है. जागरित मूर्छामें हों ऐसे योगीन्द्र खड़े हैं.)

सुहागः—उच्चारो इस प्रेमपूजाके महामन्त्र.

जोगीन्द्र ! जगो और जगाओ.

योगीन्द्रः—(आयुष्यश्वेत महाजटाको हिलाते हिलाते)

प्रेणमन्त्र तो हैं, ओ महासाध्वी !

प्रेमकुंजोंके इतने जगजूने.

वेदसंहिता अजानी नहीं हैं

मनुवंशके किसीभी वंशसे.

कहां है प्रेममन्दिरकी पुजारन ?

लो यह राधिकाजीकी रसचूनडीः

मानो तारकरत्नमाल से जड़ा
व्योमखंड उतारा पृथ्वी में.
लो, कौन संभालेगा और रक्षा करेगा ?
कहां है प्रेमकुंजकी वह गोपिका ?

(कुंजभरकर प्रश्न घोषणा गाज उठती है: लोकसागर महाशान्ति सा नीरव ठहरता है.

कुमारी:—कलमहायज्ञमें देववानी सुनो.
स्वीकारोगे ? मंगा रक्खा है
राजभंडारमें का यदुचन्द्र का मकुट,
सुवर्ण का और हीरोंसे जड़ा हुआ.

योगीन्द्र:— जगत के रसनायक का मकुट.
लाओ: सच्चा होगा तो
प्रेमज्योति दीपक प्रकटेगा प्रेममन्दिरमें.

मकुट लेकर योगीन्द्र प्रेममन्दिरमें जाता है. घड़ीभर के बाद पीछा आता है और मकुट को लोटाते २)

अरेरे ! अब भी तो प्रेममन्दिरमें
नहीं होता प्रेमज्योति दीपक,
जगती नहीं है अखंड ज्योति.

(दिशा दिशामें निराश हो कर निहारते हुए)

लो, संग्रह कर रक्खो, अवेरना,
रसचूनड़ी यह राधिकाजी की;
मकुट के लिये जाऊंगा दूसरे बारह वर्ष
भारत भर की रसकुंजोंमें.
लो, सत्कारो और अवेर रक्खो.

(कोई आगे नहीं बढ़ता. दिशा दिशा की ओर निहारता गर्ज उठता है.)

कहां है प्रेम मन्दिर की यह पुजारन
कि प्रेमपूजा–सामग्री को अवेरे और जतन करे ?

कुंकुम केसर थालमें कृष्णचन्द्र का प्रेम मकुट लेकर प्रेम कुंजमें से कुंजविभूतिसे विभूषित रतन आती है. लोकसंघ रतन को मार्ग देता है.)

अहो प्रेम परिमलसे प्रकाशता
रे ! मेरा चम्पा का फूल. ध्रुव०
केसर पीला, कुंकुम सुहाना,
नयनोंसा अमूल;
अधरामृतसा अमृत भरा सो
भंवरा गया क्यों भूल ?
रे ! मेरा चम्पा का फूल.

(रतन जा कर उस के बायें कंधेपर झूलने लगती है. वीरेन्द्र रतन के केशकलाप को पंपालता है.)

रतनः— जोगीन्द्र ! जटाकन्था कहां ?

वीरेन्द्रः—जटाकन्था के जोगियां भेस तो
रख दिये प्रेमज्योति दीपक के चरण कमलमें.
ये तो थे मार्ग के रखवाले,
और प्रेम के खाकी के परिधान.

रतनः— पूजेंगे प्रेम दीपक के साथही
जोगीन्द्र की इस जोगकन्था को भी.
जोग बिना प्रेम नहीं सोहता.

वीरेन्द्रः—प्रेमज्योति दीपक प्रकटा तो
प्रेममन्दिर की आरती भी मिलेगी अत्र.
नहीं मिले तो धारेंगे फिर एक समय
प्रेमजोगी के इस प्रेम अंचल को.

सुहागः—बारह वर्षमें जोगीन्द्र पधारे
चलो पूजें प्रेमयोगी को वन की पूजा समग्री से.

(हसती हुई वन्दन करती है, कुंकुम तिलक करती है, वनमाला पिन्हाती है.)

वीरेन्द्रः—तूने तो नहीं पहिचाना न योगीन्द्र को ?

लोकसंघः—जय प्रेमकुंजके जोगीन्द्र का.

वीरेन्द्रः— घडी भर तो मैंने भी नहीं पहचाना
प्रेममन्दिर सोने और चांदीसे मढा हुआ.
कण्व ऋषि के आश्रममें
कहांसे लाती शकुन्तला
ऐसा सोने चांदी का मन्दिर ?

सुहागः— इतने वर्ष तक छायामन्दिर था यह.

रसेशः— अब कुंकुम वर्णे लिपेंगे अद्भुत रस कुंकुमसे
सोने चांदी के कपाट भी पीछे.
योगीन्द्र के पधारनेसे प्रेमकुंजमें.

रतनः— (रसेश को)
प्रेम कुंज का मेरा अवधूत यह योगीन्द्र.
(वीरेन्द्र को)
प्रेमरस की यह प्रेरणा और कविता.

(वीरेन्द्र रसेश को मस्तक नमाता है, रसेश वीरेन्द्र के मस्तक के चारों ओर तीन बार बंसी घुमाता है और अलावला को दूर छिटका देता है.)

रतनः— (वीरेन्द्र को)
परन्तु प्रेममन्दिर की आरती कहां ?

वीरेन्द्रः—रसेशके हृदयमें है ठेठसे यह.

रसेश की पुतलियों में निरखो,
सुहाग के सौभाग्यललाटमें देखो,
रतनके अंगअंगमें अवलोको;
वहां अखण्ड विराजती है
प्रेममन्दिर की प्रेमआरती.

(प्रेमसर के तहखानेमें से पधारती देवबाला दूरसे देख पड़ती है. किरणें प्रकटाती उसके मुखमंडल की प्रभा आज कुछ और ही है.)

लोकसंघः—गूंगी, गूंगी; प्रेमसरकी गूंगी.

(प्रसन्नमुख देवबाला आज देवहास हसती है, प्रेममन्दिरकी सीढियोंको बालपदसे चढती है और पहले वीरेन्द्रके और पीछे लोक संघके वारणें लेती है.)

पधारा मेरा प्रसुखजाया वीर.
ऐसा वीरेन्द्र हो होता है योगीन्द्र.
कल्याण हो सदा प्रेमकुंजवासियोंका.
(लोकसंघ आश्चर्यचकित होकर लजाता है.)

वीरेन्द्रः—(प्रेमवन्दनामें मस्तक नमाता)
माता ! तेरा पुत्र हूं
सारा जगत है प्रेमकुंजवासी.

देवबाला ! तुझे देख कर माता याद आती है,
खड़े होते हैं सब पुराने सपने:
प्रेमकुंज के प्राचीन वैभव और जाहोजलाली,
प्रेममन्दिर के उज्ज्वल चबूतरे और शिखर.

(वीरेन्द्रको देवबाला हृदयसे चांप लेती है और मस्तक पर आशीर्वाद का एक वात्सल्यपूर्ण चुम्बन देती है.)

कुमारः—(कुमारीको)
'मूकं करोति वाचालम्' की
यह तो जगत्चमत्कारिक बात.

अग्रणीः—ओ ! तुम्हारा वाणीका तप !
छेड़ा, चिड़ाया, अपमान किया, दुःख दिये,
परन्तु जीभकी अनी भी न हिली
बीस–बीस साल तक.
कुछ कुछ प्राप्त हुए होंगे
संसार के मूक सपने मूकपनेमें.

रसेशः— उपनिषद कहती है कि विरम जाती हैं
ब्रह्मर्षिकी भी वाणी ब्रह्मदर्शनमें.

देवबालाः—
आज छोड़ा है, वीरेन्द्र !
बीस–बीस वर्षका मेरा मुनिव्रत.

दूरसे तेरे विम्बको देख–पहचान
प्रभातमें सूर्यपूजा की.
फिर पेट भर कर पारने किये
बीस–बीस वर्षोंतक एकान्तर के.
सौभाग्यका इस समय तपता है मध्यान्हः
मेरे–और प्रेमकुंजके भी–
प्रायश्चित्त आज पूरे हुए.
गुप्त भंडार भी खुलेंगे अब
मनुहृदय के और प्रेमकुंज के हृदयके.

(इतनेमें ही पहिली बालिका और पहिला बालक प्रेमसर की ओर से आरती ले कर दौड़ते–दौड़ते आते हैं. लोकसंघ की सीमासे पहले सीत्कार होता है, फिर घोंघाट और समस्त लोकसंघ की महा-गर्जना, अचानक होनेवाली किसी मेघघोषकी सी, होती है कि)

लोकसंघः–पधारी, आरती पधारी,
प्रेममन्दिर की आरती पधारी,
प्रेमपूजा की आरती पधारी.

(आरती लाकर बालक बालिका प्रेममन्दिर की देहली पर रखते हैं.)

देववालाः–जय प्रेमकुंज की !
जय प्रेमसन्त की !
जय प्रेमदेव की !

लोकसंघः–जय प्रेमदेव की !

देवबालाः–वीरेन्द्र ! तू भमता था वनवनमें;
परन्तु ओछी अधूरी न थी
रसेश की भी तपश्चर्या यहां.

वीरेन्द्रः—रसेश्वर तो होते हैं निरन्तर के तपस्वी.

सुहागः—और रतन के तपोधन भी क्या कम हैं ?
रोज़ रोज़ आकर विराजती थी
होती हुई सांझ सांझ में,
प्रेममन्दिर के मकरानी चबूतरेपर,
और दिशाओंकी गुफाओंमें.
ऊंडी–गहरी आंखोंको पिरोकर
बाट देखती थी वीरेन्द्र ! तेरी सदा.
भवबनमें भूल पड़ी मानो भामा,
जीवनधन खो बैठी हुई मानो जोगन,

देवबालाः–आ, रतन ! आ.
आया तेरा वीरेन्द्र आज.
देव प्रकट हुए और आरती भी आई.

(रतन आकर वीरेन्द्र के वीरस्कन्ध पर, लटकती वैजयन्ती मालासी लटकती है; लोकसंघमें से सहेलियां 'बारह–बारह वर्ष वे अबोले' का गीत गाती हैं)

सहेलियांः–(ढोलक बजानेवाली सखी के चारों ओर घूमते, और अपने पैर पर अंगचक्कर लगाते, और, ताली देते और लेते हुए)

बारह–बारह वर्षका अबोला रे!
पियके बोल बोले जाँय;
आज पियके बोल बोले जाँय;
भागा अबोला रे!

बारह–बारह वर्षका अबोला रे!
आँखोंमें आंखें मिली जांयः
आज आंखोंमें आंखें मिली जांयः
भागा अबोला रे!

बारह–बाहर वर्षका अबोला रे!
अन्तसमें अन्तस समायः
आज अन्तसमें अन्तस समायः
भागा अबोला रे!

देववालाः–प्रेमोत्सव मनाओ, प्रेमदेवकी सन्तानो!

लोकसंघः–प्रेमोत्सव मनाओ, प्रेमोत्सव मनाओ.

रतनः— मनाया जायगा यह भूलपड़ा उत्सव
जमाना बीते बाद आज सांझ को.
सांझको आना, प्रेमसर के सन्तजनो!

नया युग उगा आज प्रेमकुंजमें.
आजसे लगा है प्रेमसंवत्सर.

(लोकसंघ की भरती प्रेममन्दिर के दर्शन को उमराती है. सुहाग सबको प्रेममन्दिर के कुंकुमछीटोंसे छांटती है और गवाती है प्रेमानन्दका गीत.)

सुहागः—प्रेमानन्दज्योति जागी आज प्रेममन्दिरेः
पुण्यके प्रारब्ध दृगमें देवके दिये करेः·
प्रेमानन्दज्योति जागी आज प्रेममन्दिरे.

शुभके सन्देश गांय आये प्रेमजोगीराय
अमृतकी भरती दिलकी ऊर्मिऊर्मिमें तिरेः
प्रेमानन्दज्योति जागी आज प्रेममन्दिरे.

गेबगेबमें से गुंजे झांई यह प्रेमकुंजे;
प्रेमदेव की उतरे आरती उरे उरेः
प्रेमानन्दज्योति जागी आज प्रेममन्दिरे.

(गाते गाते सुहाग प्रेमानन्दकी मस्तीमें आकर, मीरांबाई नाचती थी वैसे, धीरगम्भोर नृत्य करने लगती है.)



प्रवेश २ राः

प्रेमोत्सव

(उठ चल सायंकालमें सांझ फूली है, कुंजोंमें आज वर्षो का पर्व है, प्रेमकुंजमें आज प्रेमोत्सव है. पुराने वटमाळा के समीप की आंबावाड़ीमें प्रेममन्दिर के स्थानमें तीन हिंडोले लटक रहे हैं. मन्दिर के द्वारमें फूलहिंडोला है, दहनी ओर आम्रमंजरी का हिंडोला है, बांई ओर आसापालेका हिंडोला है. प्रेममन्दिर के मकरानी चबूतरे की सीढ़ियों की एक ओर सुहाग और दूसरी ओर रतन खड़ी होकर प्रेमपूजा के आमन्त्रण के गीतद्वारा सब को प्रेममन्दिर के निमन्त्रण देती है.)

रतन और सुहागः—

हमारी कुंजमें आज प्रेम के पर्व,
　　उत्सवमें पधारिये, रसदेव!　　ध्रु०
रसोत्सवी सब उत्सव करेंगे,
हमारे उरउरमें आज वसन्त,
　　सन्तजन! वधाइये रसदेवः
घरोंघर आज प्रेमके पर्व,
　　उत्सवमें पधारिये, रसदेव!

कुमारः— (सुहाग के पास जा रसवन्दना कर के)
आमन्त्रण देती हो प्रेमपूजा के लिये
जगत के रसोत्सवियों को, सुहाग !
प्रेमपूजारी को प्रेमवन्दना है,
ओ आशापूरी की पुजारन !
आस पूरोगी न मेरी आज ?
हृदय के राजमहलमें बैठी हो:
पधारोगी न राजधानी के मेरे राजमहलमें ?

वीरेन्द्रः—सुहाग लोकलक्ष्मी है,
कुमार राजलक्ष्मी है:
राजलक्ष्मी वरेगी आज लोकलक्ष्मी को.

रसेशः— लोकधर्ममूर्ति के और राजधर्ममूर्ति के
महायोग की यह तो धन्य है घड़ी !
देवसेविका धारण करेगी देवसेविका के वागे.

देवबालाः—प्रेम मन्दिर की पुजारन तो
बनेगी अब प्रजामन्दिर की पुजारन.

सुहागः— प्रेमसर के जल का संमार्जन किया
आज सायंकालमें मोर के मंडलमें
तब मानो मुझे भी होने लगा था कि
प्रेम के छांटने मेरे पर भी छींटे गये.

रतनः— मोर को नचाता था वहां नर मोर,
प्रेमकुंज का यह राजकुमार.

सुहागः—अनुभव न किया हुआ वहां अनुभवाः
मानो कोई द्वार खुल गया,
अगोचर, आयुष्यगंभीर, और अद्भुत
और उसमेंसे देव प्रकट हुए.
आत्मा की मैना उड़ कर
इस शुककी आम्रशाखा पर बैठी.
आप की प्रेममाला, राजकुमार !
गुरुजनों की आज्ञा, वीरेन्द्र !
वधाये लेती हूं अपने नयन और मस्तकसे.
आत्मा के सिंहासन पर पधराती हूं
मेरे जीवके जीवन देवको.

(एक दूसरे को फूल माला पहनाते हैं. कुंकुम अक्षत लगाते हैं, मुस्कराते हुए केसर छांटणे छांटते हैं.)

कुमारीः—भाभी ! पक्की हो बड़ी !
भाई को आखोंसे वधाये लेती हो,
राजमकुट को मस्तकसे वधाये लेती हो.

वीरेन्द्रः—कुमार को छांटती हो! केसर छांटनेसे
छांटना वैसे ही लोकसंघ को भी.

सुहागः— (तीरछे नयनबान चलाती हुई)
हां जी, समझी हो ! जोगन्दरजी !

रतन के पास पास ही रहूंगी,
आज तक रही हूं वैसे ही:
जगत के धूरत अवधूत !

(सब हसते हैं. वीरेन्द्र के पास खड़ी हुई रतन लज्जवन्ती की सी लजाती और सकुचाती है.)

रसेशः— न भूलना प्रेमसर को
या प्रेमकुंजमें के प्रेमोत्सव को.
बरसों-बरस तो पधारना प्रेममन्दिर को
प्रेमोत्सव के परम भाग्यशाली पाहुनो:
तुम्हारे स्नेहलग्न की स्नेहतिथि के दिन.

कुमारः— प्रेमकुंज के ही भेजे हुए
प्रेमवती के पानी पियेंगे नित्य;
वेही याद दिलायगे प्रेमसर की प्रेम घटाओंको.
और इस पर भी भूले, तो
याद दिला जायगी आप की रसवंसी
जीवनयज्ञ की किन्हीं पुण्यक्षणोमें
भुलाई हुई प्रेमपूजाके मन्त्रों को.

रतन:— प्रेमपूजा की पुनः स्थापना की
रसेश ! प्रेमकुंज के प्रेममन्दिरमें:
प्रेमपूजामें पैर तुम्ह मांडोगे ?
कोई नहीं है क्या सौन्दर्यकलिका
सकल जगत की प्रमकुंजोंमें.
जो हृदय के सिंहासन पर बिराजे ?
आत्मा के प्रेम परिमलसे वधावे ?

सुहाग:— प्रेमसर के गरुडदेव ! पधारो,
हमारी प्रेमकुंजमें पैर रक्खो.

रसेश:— रसेश तो रसपूजा का खाकी है,
रसेश तो सदाका ही वैरागी है
रसेश तो जनमका जोगी है.

हम तो जुगजुग के कुंवारे
हम तो रसपूजा–पुजारे
हम तो जुगजुगके कुंवारे.
(धुनमें आकर गाता है, नाचता है.)

वीरेन्द्र:— कलाधर तो होते हैं नित्यकुंवारे:
इनके कल्पनाभोग सदा के होते हैं भूखे.
जन्मसे वरे होते हैं कलाकन्यका को.

नहीं अवतरी देखी कोई माता
कि जो जनमावे जगतकुंजोंमें
इनकी कल्पी हुई सौन्दर्यलक्ष्मियोंको.
लौकिक सौन्दर्य इनके लिये हैं अधूरे,
अलौकिकके रहते हैं अवनीवासियोंको
आशा स्वप्न और अभिलाष.
सूने-सूने हैं इनके लिये
सुन्दरताके सकल वनोपवन.
पृथ्वीतल पर तो बिना पूर्ण हुए ही रहते हैं
इनके अद्भुतताके मनोरथ.
रसके दर्शन और झांकी
इनके आत्ममंदिरमें है, जगमंदिरमें नहीं.
जगतकी रसप्यास बुझावे,
उन्हींकी बिनबुझी रहती है सदा
लोकलोकविहारिणी परम रसभावना.

(रसेश रसबंसी छेड़ता है. धीमी और मीठी, विरमती वसन्तके दूरके कोकिलालाप सी करुणः दुनिया भीग रही है इसकी रसझिरमिराहटमें.)

रतन! प्रेमकुंजके रतन!
वीरेन्द्रके जगतके रतन!

ओढ़ो राधाजीकी इस रस चूनड़ीको,
और उढ़ाना संसारभरकी रसिकाओंको.

(रतनको रसचूनड़ी उढ़ाता है.)

सुहागः—क्या क्या होता है हृदयमें, रतन !
इस प्रेमचूनड़ीके ओढ़नेसे ?

रतनः—

सबको जो होता है वही होता है मुझे भी.
सुन, कहतीहूं भला
प्रेमओढ़नी ओढ़े जो होता है सो.

दिलमें कलबल होता है
उरमें उभर चढ़कर फव्वारे छूटते हैं.
आज उगा मेरे जीवनका सूर्यदेव.

सुनतीहूं इस भूमिका वंसीबोल
कि जिसे सुननेको उत्सुक है निरन्तर
जगतके सब नर और नारियां.

आज बोलती है मेरे हियेकी कुंजमें
मधुरी सी मोहनकी वंसी जीरे!
सरोवर कुछ लहराने लगे औ
गैबी सुनी मैंने बतिया जीरे ! ध्रु०

इसका टहुका गहन उड़े व्योममें;
इसकी प्रतिधुन पड़े देवभोममें:
युग युगके वसन्त
उरउरमें लसन्त
वहे गाने अनन्त
रोम रोममें:
वंसी हो! गहरी हियेकी कुंजमें
अमृतके डंक तेरे डंखेजीरे:
इसी कुंजमें कोई स्नेहकी सुहागन
प्रीतमके प्रेममंत्र जपे जीरे:
आज बोलती है मेरे हियेकी कुंजमें
मधुरी सी मोहनकी वंसी जीरे.

(बालक और बालिकायें, उड़ते पंखीसे कल्लोल करते आते हैं)

बालिका:-सरें फूटीं

बालक:-प्रेमसरमें सरें फूटीं.

देवबाला:-लोकहृदयमें भी सरें फूटीं हैं
—पर बेटा! आरती कहां मिली?

बालिका:-हें! कहूं? पीपलके पास,
पानी उतर गये हैं वहांपर,
हम देव देव खेलतेथे देव देव.

बालकः—और देवको पधरानेके लिये फिर
खोदी पीपलकी कोटर;
तो भीतरसे आरती खिसक आई,

बालिकाः–खिसक कर आगई मेरे कोड़में
मानो देव आकर बैठगये

देवबालाः–कौमारके उत्संगमेंही पधारते हैं प्रेमदेव.
परने हुओंके प्रकटते हैं परके लिये
वह प्रेम नहीं, परन्तु है मोह या काम.

पानीके चढ़े पूर उतर
वहीं देखेथे दो प्रमुखपदचिन्ह
बीस–बीस बरसोंकी बातपर.

आज फूलडोलका उत्सव है,
प्रेमसर तरङ्गों चढा है हलकेसेः
आओ, प्रेमसरमें लहरें लो.

प्रेम–अर्थात् आत्माका स्वयंभू फव्वारा.

सुहागः—राजकुमार ! प्रजाके कुमार हो,
मेरे प्रेमविश्वके राजराजेन्द्र हो;
यह श्रीकृष्णचंद्रका प्रेममकुट;
निष्काम कर्मयोगीका राजकिरीट.

स्वीकारोगे? शिरपर धारोगे?
जूझना लोकसंग्रहके लिये,
प्रभुके पुण्यविजयके लिये,
संसारके इस महाकुरुक्षेत्रमें,
जयलक्ष्मी तुम्हें वरेगी.

(कुमारको श्रीकृष्णचंद्रका प्रेममकुट पहनाती है.)

कुमारः—(हंसते हसते)
सौन्दर्य सुहागन सुहागको वर बाद
मुझे वरना नहीं है और किसीको.
प्रेममंदिरकी आरतीभी
ठीक मिली प्रेममहूर्तमें.

देवबालाः—देवमहूर्तमें आ ही मिलते हैं
सौभाग्यके सब कल्याणयोग.
प्रेमसर में ही थी प्रेममन्दिरकी आरती.
रसेश रोज सिंहासन जमाताथा
इस अश्वत्थकी पल्लवघटाओंमें,
प्रेमारतीकी सीढियोंके ऊपर,
रोज़ मैं देखती, हंसती और कहती
कि यह कायम करेगा प्रेमपूजाकी पुनः स्थापना.
प्रेमआरतीकी रखवालीके लिये ही

वालकः—और देवको पधरानेके लिये फिर
खोदी पीपलकी कोटर;
तो भीतरसे आरती खिसक आई,

वालिकाः—खिसक कर आगई मेरे कोड़में
मानो देव आकर बैठगये

देवबालाः—कौमारके उत्संगमेंही पधारते हैं प्रेमदेव.
परने हुओंके प्रकटते हैं परके लिये
वह प्रेम नहीं, परन्तु है मोह या काम.
पानीके चढ़े पूर उतरे
वहीं देखेथे दो प्रमुखपदचिन्ह
बीस-बीस बरसोंकी बातपर.
आज फूलडोलका उत्सव है,
प्रेमसर तरङ्गों चढा है हलकेसे:
आओ, प्रेमसरमें लहरें लो.
प्रेम-अर्थात् आत्माका स्वयंभू फव्वारा

सुहागः—राजकुमार ! प्रजाके कुमार हो,
मेरे प्रेमविश्वके राजराजेन्द्र हो;
यह श्रीकृष्णचंद्रका प्रेममकुट;
निष्काम कर्मयोगीका राजकिरीट

स्वीकारोगे ? शिरपर धारोगे ?

जूझना लोकसंग्रहके लिये;

प्रभुके पुण्यविजयके लिये,

संसारके इस महाकुरुक्षेत्रमें.

जयलक्ष्मी तुम्हें वरेगी.

(कुमारको श्रीकृष्णचंद्रका प्रेममुकुट पहनाती है.)

कुमारः—(हसते हसते)

सौन्दर्य सुहागन सुहागको वरे बाद

मुझे वरना नहीं है और किसीको.

प्रेममंदिरकी आरतीभी

ठीक मिली प्रेममहूर्तमें.

देववालाः—देवमहूर्तमें आ ही मिलते हैं

सौभाग्यके सब कल्याणयोग.

प्रेमसर में ही थी प्रेममन्दिरकी आरती.

रसेश रोज सिंहासन जमाताथा

इस अश्वत्थकी पल्लवघटाओंमें,

प्रेमारतीकी सीढियोंके ऊपर,

रोज मैं देखती, हंसती और कहती

कि यह कायम करेगा प्रेमपूजाकी पुनः स्थापना.

प्रेमआरतीकी रखवालीके लिये ही

बड़ी ही कठिनाई से बिताई यह जीवन-अवधि.
एक समय न सुनी गई,
एक समय न पचाई गई जीवसे
प्रेमकुंज की परमप्रेम-आर्तता,
प्रायश्चित्त यज्ञ की पूर्णाहुति का
महाघोष लोकपुकार:
और दूसरी, प्रसववेदना समान,
रसेश की शोकसमाधि की विषादव्रीड़ा.
अन्तिम घड़ियां भारी हो पडीं दुःखकी.

रसेश:— तो क्या क्या होती होंगी विडम्बनायें
सर्वज्ञाता विश्वम्भरनाथ को,
निरख निरखकर निरन्तर के
हम सर्जननटों के नाटकीयनृत्योंको!

वीरेन्द्र:—हाथमें अमृत के कुम्भ
और मरते प्रियजनों को भी न पिलाये जा सके:
ऐसे थे भाग्यके विपरीतपन.

देवबाला:—वीरेन्द्र को भी न धवाये गये
इस हृदयमें के प्रेम—सत्व के दूध
जोगी होकर जगत् भमने को जाते हुए भी.
वीरेन्द्र ! मुझे माफ़ करना.

रतनः— क्षमा तो देवबालाके देने की है.
बीस–बीस वर्षके प्रभात मध्यान्ह और सांझ को
प्रेमकुंज में उपहासके कीच डाले
'गूंगी' 'गूंगी' पुकार पुकार कर.
अवाचक को अज्ञानी मान मान कर
अपमान की धूलिसे वधाया.

यह अवाचकता तो ज्ञानकी चावी थी
प्रेममन्दिर के परम रहस्य की.
भूली थी, प्रेमकुंज पंथ भूली थी.

रसेशः— जैसा बड़ा ज्ञानी, वैसा ही थोड़ाबोला.
परमज्ञानी तो अवाचक ही होता है.
वाणीसे पर ही होता है सदा
परब्रह्म और परम ब्रह्मानुभव

देवबालाः–रसिका भी मृत्युशय्यापर यही रटती,
'प्रेमकुंज मार्ग भूली है,
प्रेमकुंज मार्ग भूली है.'
रसेशने पतवार फिराई जहाज की
वीरेन्द्रने कूपस्तम्भ और बढ़वान चढ़ाये.
आज झुकाई है फिर एक वार

प्रेमकुंज की महानौका प्रेमसागरमें.
मिला है प्रेममन्दिर का परम रहस्य.

मनाओ प्रेमपूजाका प्रेमोत्सव
सब प्रेमकुंज के पुण्यशालियो.

(प्रेमदेवकी अखंडज्योत को रसेश फूलहिंडोले पर पधराता है, वंसीपूजा करता है. रतन और वीरेन्द्र, सुहाग और कुमार, वीस वरस में पाई हुई प्रेममन्दिर की अनेकशिख आरती से इस अखंड-ज्योति की आरती उतारते है. रसेश प्रेमपूजा की आरती गवाता है, और उत्सवके सभी उत्सववाले उसे झेलते हैं. देववाला घंटा वजाती है. जगतभरको न जता रहे हों इस तरह वालक और वालिकायें वीचवीचमें शंख फूंक रहे हैं.)

रसेशः—गांय क्या गुणानुवाद तेरे ! कहो जयति जय !
जयति जय प्रेमज्योति, तेरे ! अहो ! जयति जय !
देशदेश खंडखंड भूमिभूमि जयति जय !
जयति जय ! जीवनज्योत !
जयति जय ! हियज्योत !
जयति जय ! ओतप्रोत.

आयुकी रसधारें: अहो जयति जय !
गांय क्या गुणानुवाद तेरे !—

देवबाला:—वीरेन्द्र ! विराज मञ्जरी हिंडोले पर,
और कुमार ! नवपल्लवके हिंडोले,
तुम्हारी प्रियतमायें तुम्हें,
और तुम्ह भी झुलाना वैसे ही
फिर उन्हें इस रसहिंडोलेमें.

(देवबाला की आज्ञावंटड़ी के अनुसार वीरेन्द्र और राजकुमार हिंडोलेमें विराज जाते है. प्रियतमायें प्रियतमों को प्रेमझूले झुलाती हैं. प्रेमज्योतिका नित्यपुजारी रसेश फूलहिंडोले को झोले देता-देता प्रेमपूजा की आरती का दूसरा पद गवाता है.)

लोकलोक का उजास,
देवदेवका सुवास,
युगयुगोंका ये उल्लास,
परम प्रेमका प्रकाश:
गांय क्या गुणानुवाद तेरे ! कहो जयति जय !

वीरेन्द्र:—अब रतन ! तू विराज.

कुमार:—और सुहाग ! तू भी
प्रेममन्दिर के इस प्रेमझूले पर.
अब झुलावेंगे तुम दोनोंको
प्रेममन्दिर की परम पुजारनोंको.

(रतन और सुहाग झूले पर विराजती हैं, वीरेन्द्र और कुमार उन्हें झुलाते हैं. प्रेमपूजा की आरतीका तीसरा चरण रसेश गवाता है.)

रसेशः—देशदेश, खंडखंड, भूमिभूमि, विश्वविश्व,
गाओ, सब महिमा यह गाओ–गाओः
नर उर की नारीपूजा,
नारी उर की नरपूजा,
गाओ–गाओः
देशदेश, खंडखंड, भूमिभूमि, विश्वविश्व,
गाओ, सब महिमा यह गाओ–गाओः
गांय क्या गुणानुवाद तेरे! कहो जयति जय!

वीरेन्द्रः—प्रेममन्दिर के प्रेमपुजारिओ !
प्रेमसरोवर के जल पीने वाले पुण्यवानो !
प्रेमकुंज के परम रसिक जनो !
प्रेमोत्सव के आशाभरे उत्सविओ !
प्यासा जगत मांगता है आज
प्रोत्साहन के रस पिलाने वाले योगीन्द्रको,
प्रेरणा के अमृत पिलाने वाले पैगम्बरको.
वृद्ध प्राचीन जगतको
थाक चढ़ी है जीवनकी

उतार हुए हैं आयुष्य के.
खिर पड़े हैं मनुष्य जाति की
उड़ने की पांखों के पींछे.
कान बहरा गये हैं,
सुनते नहीं हैं जीवनमन्त्र.
आंखें अंधिया गई हैं,
उकेलती नही हैं देवसंहिता.
नहीं झेले जाते और नहीं पढ़े जाते
संसार के लोगोंमें गर्जते हुए महाशब्द.
श्रमित हैं चिरयात्रा के श्रमसे
मनुवंश की दसों इन्द्रियां
इस थकावट को दूर कर प्रोत्साहन भरे,
पैरोंमें उमंग की उड़ान प्रेरे–पोसे,
हियेमें ज्वलन्त ज्योति का उल्लास जगावे,
आत्मा के पांखें प्रकटावे:
ऐसा चाहिये जगत के लिये योगीन्द्र:
मानव जाति के महासागरमें
आनन्द–भरती को उभार देनेवाला देवचन्द्र
उरउरमें प्रेमसरोवर रचे,
घरघर की प्रेमकुंज सरजे,

और कुंजकुंजमें प्रेमोत्सव मनवावे:
पुतली–पुतलीमें प्रदीप्त करे रसज्योति,
जकड़े हुए खोलदे अन्तर के भंडार,
और जगत को झुलावे रसहिंडोले पर:
ऐसे प्रेममन्दिर के पुजारियों के
अवनिवासियों को हैं अब अभिलाष:
पुण्योज्वल, सुधासोहन जगगर्जन्त
रसऋचायें रचते महानुभाव रसर्षि:
इस युग का अवनी का योगीन्द्र.

कुमार:— रसेश ही है ऐसा रसर्षि:
वंसी–अर्थात् प्रोत्साहन की प्रेरणा.
रसर्षि इसे पूर रहे हैं प्रजा जीवनमें.
और फूंक भरते हैं जीवन वंसीमें.

रसेश:— प्रेमकुंज के परम सन्तो !
गाओ इस जगत हिंडोले का गीत.
पुरानी पुरानी सर्जन-छिनसे
ब्रह्माण्ड तो आरूढ ही है
परब्रह्म के रस हिंडोले पर.

(रतन और सुहाग गवाती है जगत हिंडोले के गीत को, और प्रेमकुंजनिवासी उसे झेलते हैं. जगत के अदृश्य सत्व भी इस

गीत को झेलते जान पड़ते हैं. प्रेमकुंजमें सर्वत्र दीपमाला प्रकटती है. मन्दिर मन्दिर, वृक्ष वृक्ष, शिखर शिखर, डाल डाल, पान पान, दूर जलमें की डोंगी डोंगी में दीपमालिका जगमगा उठती है.)

रतनः— बीस बीस बरसोंमें न प्रकटी
ऐसी दीपमाला प्रेमकुंजमें.
तारे उतारकर मानो कुंजमें मंढ दिये !

(फूलहिंडोले पर रसेश प्रेमदेव को झुलाता है. मञ्जरी झूले पर बालिका, वीरेन्द्र को और रतन को झुलाती है, नवपल्लव के झूले पर बालक, कुमार और सुहाग को झुलाता है. विश्वविराट को भर के प्रेमहिंडोले का गीत गूंज जाता है.)

रतन और
सुहागः— **जगत झूले रस झोलेः**
अद्भुत किसी प्रेमके हिंडोले, हिंडोले, हिंडोलेः
झूले रसझोले.

भरती अनन्त डोले,
ब्रह्माण्ड भींजे छोळे,
परब्रह्म के खोळेः
हिये हिये कोई कोयल बोले, कल्लोले, विलोलेः
झूले रसझोले.

अद्भुत किसी प्रेम के हिंडोले हिंडोले हिंडोःले
झूले रसझोले.

देवबाला:—जय ! प्रेम की पुनः स्थापना की जय !

रसेश:— जय विजयध्वजी प्रेमदेव की जय !

(प्रेमपूजा की पुनः स्थापना और प्रेमोत्सव की जय घोषणा गजाता हुआ लोकसंघ प्रेमसत्व की भरतीमें कल्लोल करता झूम रहा है.)

